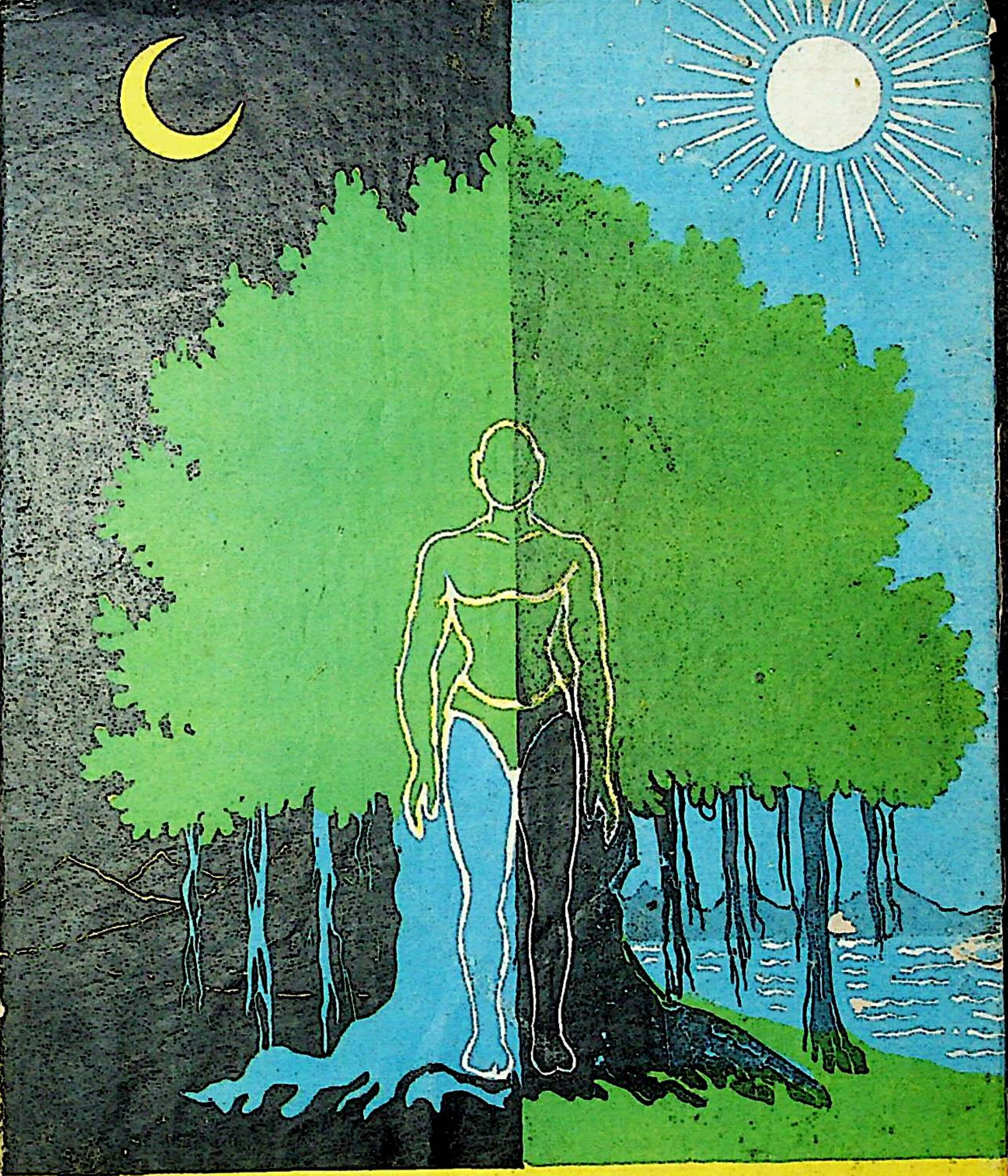


जीवेम शरदः शतम्

वैद्य रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ'

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त
तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर
प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

जीवेम

[स्वास्थ्योपयोगी निबन्धों का संग्रह]

लेखक

वैद्य रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ'

प्रस्तावना लेखक

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

प्रकाशक

श्री अम्बिका आयुर्वेद भवन

७।१, बाबूलाल लेन, कलकत्ता—७

प्रकाशक :
श्री अम्बिका आयुर्वेद भवन
७१, बाबूलाल लेन (तुलापट्टी),
कलकत्ता-७

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य—३.५० नये पैसे

प्रिण्टर्स :
श्रीदेवप्रसाद मित्र
एलेम प्रेस
६३, बिडन स्ट्रीट, कलकत्ता-६

प्रस्तावना

जीवन का अर्थ केवल साँस लेना मात्र नहीं है और न पेट भरकर जीते रहना मात्र है। जीवन ऐसी कला है, जिसके द्वारा शरीर को नीरोग, कान्तिमान् और स्फूर्तिशील बनाकर रक्खा जा सके, स्वयं संसार के समस्त वैभव को प्राप्त करने और उसका उपभोग करने की क्षमता के साथ दूसरों को उसका उपभोग करा सकने का सामर्थ्य प्राप्त किया जा सके, अपनी दैहिक तथा मानसिक शान्ति के साथ सरलता से शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का संचय किया जा सके, दूसरों की रक्षा और उनका पथ-प्रदर्शन करने की शक्ति संचित की जा सके और इस प्रकार जीवन-यापन किया जा सके कि उसके सौन्दर्य से केवल अपने को ही तृप्ति न प्राप्त हो वरन् दूसरों को भी उससे प्रेरणा मिले और वे भी वैसी ही तृप्ति प्राप्त करके जीवन-आनन्द ले सकें।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में लिखा है कि मेरे कथन के अनुसार जो व्यवहार करेगा, वह सत्तर वर्ष की अवस्था तक किशोरावस्था में ही रहेगा—

आषोडशात्सप्ततिपर्यन्तं कैशोरकम्।

किन्तु हमने उस जीवन की पद्धति का तिरस्कार करके अत्यन्त कृत्रिम जीवन-पद्धति स्वीकार कर ली, जिसमें न आहार का संयम रहा न विहार का। जहाँ के ब्रह्मचारी हवन कुंड की भस्म मस्तक पर लगाते हुए कहा करते थे :—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥

(हमें जमदग्नि, कश्यप और देवताओं की आयु से तिगुनी आयु प्राप्त हो।) वे आज युवावस्था की चौखट लाँघते-लाँघते जराकुश हो जाते हैं, अनेक रोग उनके शरीर को सुखाशय बनाकर डेरा जमा बैठते हैं और वे केवल औषधिजीव्य मात्र रह जाते हैं।

एक भारतीय वैद्य की बड़ी प्रसिद्ध कथा है कि उस वैद्य की औषधियों से संतुष्ट, प्रसन्न और स्वस्थ होकर जनता ने उनका सम्मान किया और घोषणा की कि आप

सबसे बड़े वैद्य हैं। इस पर वैद्य महोदय ने अत्यन्त सत्यनिष्ठा से कहा कि मेरे दोनों बड़े भाई मुझ से बड़े वैद्य हैं। मेरे सबसे बड़े भाई तो अपने आस-पास, पड़ोस के लोगों को ऐसे ढंग से रहने की शिक्षा देते और अभ्यास कराते हैं कि कोई रोगी हो ही नहीं पाता। दूसरे भाई ऐसे कुशल हैं कि वे रोग उत्पन्न होते ही तत्काल उसका शमन कर देते हैं, इसलिए उन दोनों का नाम नहीं हो पाया। मुझे रोग दूर करने में समय लगता है, इसलिए लोग मुझे अच्छा वैद्य समझते हैं कि मैं बढ़े हुए रोग को अच्छा कर सकता हूँ। किन्तु वास्तव में मैं तो तृतीय श्रेणी का वैद्य हूँ।

तात्पर्य यह है कि भारतीय आयुर्वेद केवल चिकित्सा-विज्ञान नहीं है, वह आयु-र्वेद है, नीरोग रखने और रहने की पद्धति है, जिसमें प्रसंगवश सरोग होने पर स्वस्थ होने का भी विधान विस्तार से बताया गया है, क्योंकि थोड़ी-सी असावधानी होने से ही शरीर व्याधिमन्दिर बन सकता है।

इस दृष्टि से 'जीवेम' पुस्तक का सभी ओर से स्वागत होना चाहिए, क्योंकि इसमें रोग दूर करने के कुछ नुस्खे नहीं बताये गये हैं वरन् ऐसी जीवन-चर्या का क्रम समझाया गया है, जिससे मनुष्य स्वस्थ तथा निश्चिन्त जीवन व्यतीत करता हुआ चारों पुरुषार्थों की सिद्धि सरलता और सफलता के साथ कर सके।

मैं हृदय से इसके लेखक महोदय को साधुवाद और बधाई देता हूँ कि उन्होंने वास्तव में आयुर्वेद की मूल भावना का, स्वस्थ रखने और स्वस्थ रहने का ही इसमें/ प्रतिपादन किया है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक का व्यापक सम्मान और स्वागत होगा।

कलकत्ता
अक्षय तृतीया
संवत् २०२१ वि०

—सीताराम चतुर्वेदी

शुभाशंसा

वैद्य रामाधीन शर्मा तरुण उत्साही वैद्य हैं। आयुर्वेद का काम बड़े मनोयोग से करते हैं। चिकित्सा के प्रति उनके हृदय में अनुराग है और निरलस भाव से वैद्यक के कार्य को स्वधर्म समझ कर करते हैं। उनसे प्रथम-प्रथम परिचय पाकर मुझे हार्दिक उल्लास मिला। मुझे लगा वे सब प्रकार से आयुर्वेद के कार्य को प्रगतिशील करने में सक्षम हैं।

श्री रामाधीन शर्मा की प्रथम पुस्तक 'जीवेम' आपके सम्मुख है। राष्ट्र के सम्मुख स्वास्थ्य का एक गंभीर प्रश्न है, इस ओर न राष्ट्र-नेताओं का पूरा ध्यान है और न जनता का। यह अंग सर्वथा उपेक्षितप्राय है। जनता का ध्यान आकर्षित हो, लोग दवाइयों के चक्कर से निकल कर, स्वास्थ्य, नैरोग्य और दीर्घजीवन के विशाल राज-पथ पर अग्रसर हों, यही भावना इस पुस्तक की प्रेरणा के मूल में प्रतीत हो रही है।

मेरा विश्वास है, जनता द्वारा इस पुस्तक का स्वागत होगा। भविष्य में स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें सरल व सरस भाषा में इसी प्रकार प्रकाशित होती रहें तथा लोगों को दीर्घजीवन की सत्प्रेरणा प्राप्त हो, यही मेरी शुभाशंसा है।

सोनगिरि का कुआँ
बीकानेर, राजस्थान

—अक्षयचन्द्र शर्मा

प्रवेश

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

इस संसार में सभी सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभी कल्याण की प्राप्ति करें और किसी को दुःख न हो।

भारतीय संस्कृति सनातन है, उदार है और सब का कल्याण चाहती है। सब सुखी हों, सब नीरोग हों। यह हमारी संस्कृति का सार तत्व है। सब नीरोग हों, इस उदार भावना व मंगलकामना मात्र से तो काम हो नहीं सकता। नीरोग रहना बहुत कुछ हमारे वश में है।

आज हम भारतीय स्वास्थ्य के प्रति उदासीन हैं। न भोजन का ध्यान, न आराम-विश्राम का। रात-दिन कामों में उलझे रहते हैं और अपने शरीर का ध्यान भी नहीं रखते। इसका कुफल हमारे सामने है। प्रायः लोग अपने साथ बीमारियाँ लगाये रहते हैं, रात-दिन दवाइयों के चक्कर में रहते हैं और अध जिन्दे से किसी प्रकार जीवन को बिताते हैं।

'जीवेम' जिसका अर्थ है, हम जीवें, 'जीवेम शरदः शतम्' हम सौ वर्ष जीवें— यही मानव मात्र की, कहना चाहिए प्राणि मात्र की, प्रबल और सनातन आकांक्षा है। 'जीवेम' के द्वारा हम देशवासियों का ध्यान आग्रहपूर्वक राष्ट्र के स्वास्थ्य के प्रति आकर्षित करना चाहते हैं।

आरोग्य ही सभी उन्नति का मूल है। जिनका शरीर रुग्ण है, उनका इह लोक भी बिगड़ा और परलोक भी, उनसे न स्वार्थ सधा और न परमार्थ। सुन्दर, सबल और तेजस्वी स्वास्थ्यवाले ही राष्ट्र की रक्षा कर सकते हैं, राष्ट्र को आगे बढ़ा सकते हैं और राष्ट्र की गरिमा को अक्षुण्ण रख सकते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— ये चार पुरुषार्थ स्वास्थ्य पर निर्भर हैं।

'जीवेम' इस पुस्तक में हमने नीरोग रहने के उपायों पर प्रकाश डाला है। हमारी दृष्टि इस बात की ओर अधिक रही है कि हम बीमार ही न पड़ें। प्रकृति के

नियमों का पालन करने से हम बीमार नहीं पड़ सकते। खान-पान, आचार-विचार, विश्राम-व्यायाम, संयम-भोग आदि अनेक उपायोगी बातों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

साथ ही बीमारियों के आ जाने पर उनकी तात्कालिक चिकित्सा किस प्रकार की जावे, इसका भी निर्देशन है। इस पुस्तक में अनेक अजमाये हुए नुस्खों व अनुभूत औषधियों की भी चर्चा है, जो सब प्रकार से लाभप्रद है।

इस पुस्तक के मूल प्रेरक हैं—परम आदरणीय, हिन्दी-साहित्य के गम्भीर विद्वान् श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा। श्री शर्माजी के निरीक्षण में यह कार्य सम्पन्न हुआ है, उनकी सामग्री का मुक्त उपयोग इस पुस्तक में है, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना एक औपचारिकता मात्र होगी। सामग्री के जुटाने में वैद्य पं० बनवारी लाल शास्त्री का सहयोग मिला है, मैं उनका बहुत आभारी हूँ।

अनेक भाषाओं के उद्भट विद्वान् एवं भारतीय संस्कृति के परम पुजारी आचार्य प्रवर पं० सीताराम चतुर्वेदी का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्रस्तावना लिखकर इस पुस्तक के गौरव की श्रीवृद्धि की है।

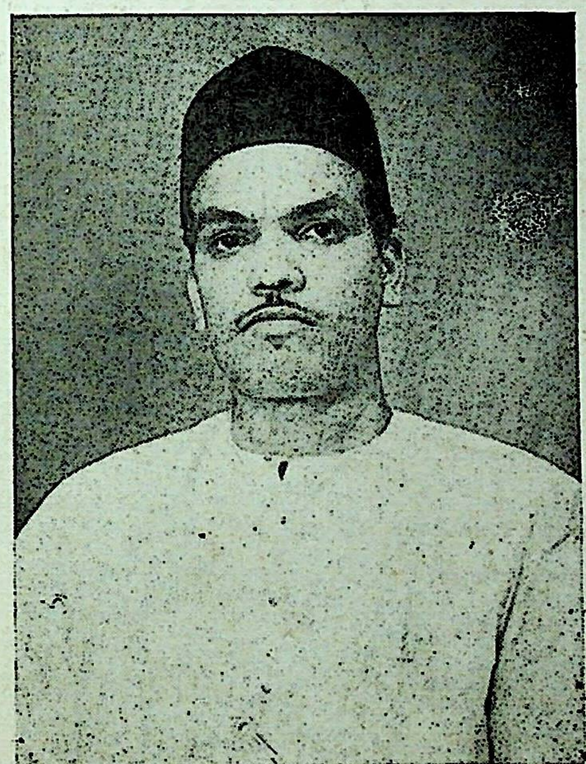
यह पुस्तक जनता-जनार्दन की सेवा में सादर समर्पित है। हमारी मंगल कामना है कि विश्व के सभी नर-नारी इन छः सुखों को प्राप्त कर, अपने जीवन को सार्थक बनावें।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
अश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानिराजन्॥

—हे राजन्! नित्य धन का लाभ, आरोग्यता, प्रियतमा व मधुर भाषिणी स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र और धन का लाभ करनेवाली विद्या ये संसार में छः सुख हैं। इति शुभं भूयात्।

कलकत्ता
अक्षय तृतीया
सं० २०२१ वि०

—वैद्य रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ'



वैद्य रामाधीन शर्मा "वशिष्ठ"

विषय-सूची

जीवेम

१. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

शरीर भगवान का मन्दिर :

महाकवि कालिदास का यह कथन––'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'––शरीर धर्म-साधन का मूल है, हमारे जीवन का शाश्वत सत्य है, यह एक ऐसा सत्य है, जिस पर न काल का प्रभाव है और न देश का। सचमुच हमारा यह शरीर हमारी सारी साधनाओं, सारी सिद्धियों, सभी पुरुषार्थों का मूलाधार है। जिस प्रकार एक विशाल वृक्ष मजबूत जड़ों के सहारे खड़ा रहता है, विशाल भवन मजबूत नींव पर टिका रहता है, उसी प्रकार मनुष्य जीवन का सारा विकास स्वस्थ शरीर पर टिका हुआ है।

प्रत्येक मनुष्य में जीवित रहने, दीर्घकाल तक जीवित रहने, केवल जीवित रहने की ही नहीं, नीरोग व स्वस्थ रहकर जीवित रहने की प्रबल आकांक्षा है, पर केवल आकांक्षा होने मात्र से ही काम नहीं बनता। न चाहने पर भी दुनिया में दुःख है, रोग है, शोक है, अल्पायु में मृत्यु है—ऐसा क्यों? मनुष्य ने अपने अज्ञान व प्रमाद से इस स्वर्ग-से संसार को नरक बना रखा है। यदि हम थोड़ी-सी सावधानी बरतें, तो हम अपने शरीर को नीरोग, स्वस्थ व प्रसन्न बनाकर इस संसार को स्वर्ग में बदल सकते हैं।

स्वास्थ्य ईश्वर का सर्वोत्तम वरदान है, प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ देन है। स्वास्थ्य के अभाव में यह सारा संसार नरक है, यह जीवन व्यर्थ है। माना, आपके पास धन है, दौलत है, मोटर है, बंगले हैं, रूप है, वैभव है, व्यापार है, कमाई है—सब कुछ है; पर, यदि आप नीरोग नहीं हैं, बीमार हैं—तो यह सारा वैभव व्यर्थ, सारा ठाट-बाट फीका, तरह-तरह के सुस्वादु भोजन बेमजा, बेस्वाद। उस समय आपको घर भार स्वरूप मालूम होगा, भोग साँप बनकर काटने दौड़ेंगे। दुनिया सूनी मालूम होगी, सूरज फीका नजर आयेगा, आकाश उदास, बादल बेदरंग और सारी भरी-पूरी धरती सूनी-सूनी-सी नजर आयेगी।

शरीर के स्वस्थ रहने पर आपके लिये सही अर्थों में संसार है। यह धर्म, यह साहित्य, यह रूप, यह सौन्दर्य—स्वस्थ शरीर के लिए है, बीमार के लिये नहीं। ये आविष्कार, गिरि शिखरों के ये अभियान, अन्तरिक्ष की यह उड़ान, सभी स्वस्थ शरीर के चमत्कार हैं। चिन्तन की गहराई, कल्पना की उड़ान, भावों की व्यापकता का आप तभी आनन्द ले सकते हैं, जब कि आपके पास स्वस्थ शरीर हो।

प्रकृति ने हमें शरीर दिया है, मानव-शरीर, भगवान् के रहने का मन्दिर। इस मन्दिर को स्वस्थ, सुन्दर, सबल, तेजस्वी और तरुण रखने की आवश्यकता है। यह मन्दिर उषा की तरह अरुण हो, चाँदनी की तरह मुस्कराता हो, जल की तरह निर्मल हो और हवा की तरह स्वच्छन्द व गतिशील।

मुरझाया हुआ चेहरा, निस्तेज आँखें, झुर्रियों की कुटिल रेखाओं से भरी आकृति—यह सचमुच भगवान् का अपमान है।

आप विद्यार्थी हैं, आपका काम अध्ययन करना है। इस अवधि में आपको भावी जीवन के लिये सभी प्रकार से पूरी तैयारी करनी है। इस समय यदि आपने शरीर को पूर्ण स्वस्थ व सबल नहीं बनाया, तो आपको जीवन भर पछताना पड़ेगा।

जिनका शरीर रुग्ण है, वे न ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और न अपनी मौलिक सूझ-बूझ व प्रतिभा से मानव जाति को लाभान्वित कर सकते हैं। बीमार रहने से न पढ़ने में मन लगेगा, न स्मरण शक्ति काम करेगी, न धारणा शक्ति साथ देगी और न एकाग्रता ही टिकेगी।

आप चाहे व्यापारी हों, चाहे नेता, चाहे मंत्री, चाहे सन्त-महात्मा, चाहे त्यागी-वैरागी—यदि आप स्वस्थ नहीं, तो आपके सभी कार्यों में गड़बड़ होगी। आप न स्वार्थ-सिद्धि कर सकेंगे और न परमार्थ-सिद्धि। यह लोक भी बिगड़ा और परलोक भी। प्रेय और श्रेय, अभ्युदय और निःश्रेयस—सभी की सिद्धि स्वस्थ शरीर पर है। 'पहला सुख निरोगी काया'—यह संसार का अनुभूत वाक्य है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने जिस रामराज्य का भक्ति गद्‌गद वाणी से वर्णन किया है, उसमें भी दो बातें स्पष्ट लिखी हैं, सब नीरुज और कोई अल्पायु नहीं—

(१) सब सुन्दर सब निरुज सरीरा

(२) अल्प......

सौन्दर्य का मूल भी स्वास्थ्य है। यदि किसी का रूप-रंग कितना ही सुन्दर हो, वह यदि स्वस्थ नहीं है तो उसका सारा शरीर खण्डहर की तरह दिखाई देगा, रंग उड़ते नजर आवेंगे और चमक गायब हो जायगी। चेहरे पर रुखाई, भयंकरता, विद्रूपता और भद्दापन उभरता दिखाई देगा। सुन्दरता स्वास्थ्य का बाह्य प्रस्फुटन है, वह भीतरी कान्ति है, जो चेहरे को लावण्यमय व प्रभामय बनाती है।

यह मानव शरीर जो ऋद्धि-सिद्धि का आधार है, उसकी ओर ध्यान न देना एक सामाजिक अपराध है, राष्ट्रीय दृष्टि से कलंक है, प्राणिमात्र की दृष्टि से कृतघ्नता है और धार्मिक दृष्टि से पाप।

अतः हमारा प्रथम और परम पावन कर्त्तव्य है कि हम अपने शरीर को स्वस्थ, सबल व प्रसन्न रखें और जीवन भर अदीन भाव से कर्त्तव्य कर्म करते रहें। कम-से-कम सौ वर्ष तक जीवित रहने का हमारा अधिकार है, उसे हम प्राप्त कर सकते हैं।

पूर्ण स्वस्थ कौन ?

क्या आप पूर्ण स्वस्थ हैं ? यदि आप दवाई न लें तो साधारणतः समझा जाता है कि आप स्वस्थ हैं। आपको दीर्घजीवन मिला है, तो आप अपने को स्वस्थ कह सकते हैं। लेकिन, पूर्ण स्वस्थ होना कुछ और ही बात है।

यदि कोई आदमी दीखने में बीमार नहीं पड़ा, रोगियों-सा शय्या पर नहीं लेटा, तो वह स्वस्थ माना जाता है। स्वस्थ या पूर्ण स्वस्थ की यह कसौटी नहीं, यह ठीक पहचान नहीं।

पूर्ण स्वस्थ मनुष्य की पहचान यह है कि आपकी पाचनक्रिया ठीक हो, सारी इन्द्रियाँ ठीक काम करती हों, मल-विसर्जन की क्रिया नियमित हो, कार्य करने में उत्साह व स्फूर्ति हो, मन में प्रसन्नता हो, शान्ति व सौमनस्य हो, ईर्ष्या, द्वेष व जलन न हो, किसी प्रकार की उत्तेजना न हो। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिये मानसिक स्वास्थ्य का होना भी आवश्यक है। मन में चिन्ताओं का होना—बीमारियों का बीज है। आधि-व्याधि का मूल है; जिनको आधियाँ, मानसिक चिन्ताएँ नहीं, उनको व्याधियाँ भी नहीं हो सकतीं।

काकभुशुण्डि के अनुभव :

किसी भी स्वस्थ, नीरोग, पौरुषपूर्ण एवं दीर्घजीवी व्यक्ति को देखकर मन में सदा ही यह प्रश्न उठता है कि आखिर यह स्वस्थ व नीरोग कैसे है और इसकी कार्य शक्ति व लम्बी उम्र पाने का रहस्य क्या है ? आखिर इस व्यक्ति में बच्चों की तरह उत्साह, उमंग व जिन्दादिली क्यों ? यह प्रश्न, यह कुतूहल, यह जिज्ञासा या विस्मय भाव स्वाभाविक है। मनुष्य में दीर्घजीवन की प्रबल आकांक्षा है; कहना चाहिए—प्राणिमात्र में जिजीविषा—जीने की इच्छा की दुर्दमनीय वासना सदा से रहती है।

हम दीर्घजीवी व नीरुज व्यक्तियों को देखकर प्रमुदित होते हैं और उनके अनुभवों को सुनने में बेहद खुशी का अनुभव करते हैं और चाहते हैं कि हम भी उनके पथ का अनुसरण करें। हाँ, यह बात और है कि हमारा प्रमाद, आलस्य की हमारी अकर्मण्यता हमारी राह में रोड़े बनकर अड़ जायें और हम उससे पूर्ण लाभ न उठा सकें।

हजारों वर्ष पहले ऐसा ही एक कुतूहल भरा प्रश्न महर्षि वसिष्ठ ने काकभुशुण्डि से किया था। काकभुशुण्डि ने अपने निरामय (नीरोग) और दीर्घजीवी होने के रहस्य का बहुत विशद वर्णन किया है। ये बातें बहुत पुरानी हैं; पर आज भी बहुत काम की हैं। इन बातों पर यदि हम गम्भीरतापूर्वक मनन करें एवं अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें, तो हम निश्चित रूप से लाभान्वित हो सकते हैं।

विचारों की शुद्धता :

चित्ते विधुरिते देहःसंक्षोभमनुयात्यलम्।

(चित्त की गड़बड़ होने से अवश्य ही शरीर में गड़बड़ होती है।)

आज हमारे मन में गड़बड़ है। हमने दुनिया भर की दुश्चिन्ताएँ मन में पाल रखी हैं। हम काम भी इस तरह का करते हैं कि रात-दिन उसकी चिन्ता में घुले जाते हैं। हमारी यह दिमागी अस्वस्थता बीमारियों का कारण है। मन को निर्मल व निश्चिन्त बनाये बिना हम पूरी तरह स्वस्थ नहीं रह सकते। ये आधियाँ हमारी व्याधियों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं।

'योग वसिष्ठ' में विस्तार से समझाया गया है कि मन में जब उथल-पुथल होती है, तो शरीर में संक्षोभ पैदा होता है, इससे प्राणों के प्रसार में विषमता आ जाती है। प्राणों की गड़बड़ी नाड़ियों के संस्थान में गड़बड़ी मचा देती है और आगे चलकर इससे अन्न का पाचन बिगड़ जाता है और इससे बीमारियाँ घर दबाती हैं। इस प्रकार आधि व्याधि का मूल कारण है।

विचारों की शुद्धता शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने में सहायक है। विचारों की शुद्धता के लिये श्रेष्ठ साहित्य का पठन, सत्संग और महात्माओं की वाणियों का अनुशीलन आवश्यक है।

चित्त की शांति :

भावाभावमयी चिन्ताभीहितानीहिन्विताम्।
विमृश्यात्मनि तिष्ठामि चिरं जीवाम्यनामयः।

[इष्ट और अनिष्ट होने और न होने की चिन्ता को त्याग कर मैं सदा आत्म भाव में स्थिर रहता हूँ, इसी कारण मैं नीरोग और दीर्घजीवी हूँ।]

इद मद्य मया लब्धमिदं प्राप्स्यामि सुन्दरम्।
इति चिन्ता न मे तेन चिरं जीवाम्यनामयः।

[आज मैंने इस वस्तु को प्राप्त कर लिया है, कल उस सुन्दर वस्तु को प्राप्त करूँगा, इस प्रकार की चिन्ता मुझे नहीं होती, इससे मैं स्वस्थ और चिरजीवी हूँ।]

इससे स्पष्ट है कि नीरोग रहने के लिए चित्त की शान्ति आवश्यक है। आज सभी लोग सांसारिक व भौतिक वस्तु जाल को अधिक-से-अधिक प्राप्त करने में लगे हैं। सभी के मन में प्राप्त के प्रति असन्तोष और अप्राप्त के प्रति प्रगाढ़ आसक्ति है। वासनाओं के वण्डर में सभी उड़े जा रहे हैं, जीवन च्युत उल्का पिण्ड की तरह भटक रहा है, जल रहा है। टहनी से टूट कर नदी के प्रवाह में पड़े पत्ते की तरह हम वेग से निरुद्देश्य बह रहे हैं। न शान्ति, न धीरज, न सन्तोष। असन्तोष की दोजख की आग में सभी जल रहे हैं। इसका नतीजा यह है कि हमारी दैनिकचर्या अस्तव्यस्त और भद्दी है। मन से निराश, शरीर से लाचार और गति से हीन हमारे इस पंगु जीवन के कारण हमीं हैं।

योग वासिष्ठकार की दृष्टि में मृत्यु हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जो मरता है, वह अपने कर्मों से मरता है। मृत्यु को ललकारनेवाली वाणी क्या हमारे स्मृति-पट पर कभी धूमिल पड़ सकती है?

मृत्यो न किञ्चिच्छक्यस्त्वमेको मारयितुं बलात्।
मारणीयस्य कर्माणि तत्कर्तॄणीति नेतरम्॥

[हे मृत्यो! तू अपने बल से किसी को नहीं मारती। जो करता है वह अपने ही कर्मों द्वारा मारा जाता है, किसी दूसरे कारण से नहीं।]

हजारों बीमारियों को हम स्वय निमंत्रण देकर बुलाते हैं। मिथ्या आहार, मिथ्या विहार और तरह-तरह की मनमानी चीजों का शौक हमारी दुर्दशा का मूल कारण है।

सद्गुणों का विकास :

काकभुशुण्डिजी ने अनेक सद्गुणों की ओर इशारा किया है, जिन्होंने उनको पूर्ण स्वस्थ रहने में योग दिया है।

(१) मैं प्रेमयुक्त होकर सबको ममता से देखता हूँ।
(२) अभिमान त्याग कर सब कुछ करता हुआ भी निष्क्रिय रहता हूँ।
(३) मैं समर्थ होने पर भी किसी पर आक्रमण नहीं करता।
(४) मैं जीर्ण-शीर्ण वस्तुओं में भी नवीनता का आनन्द प्राप्त कर लेता हूँ।
(५) दूसरों को सुखी देखकर मैं सुखी होता हूँ।
(६) दूसरों को दुःखी देखकर मैं दुःखी होता हूँ।
(७) आपत्ति आने पर अचल व धैर्ययुक्त रहता हूँ।
(८) भाव व अभाव में मैं सर्वदा एक समान रहता हूँ। इन्हीं कारणों से मैं नीरोग और दीर्घजीवी हूँ।

जीवाम्यनामयः

आज हमारे चिन्तन के मूल में ही त्रुटि है, इसी से आधि-व्याधि ग्रस्त जीवन के भार को लेकर हम अधमरे से निराश व उदास जीवन को ढचर-ढचर लचाते हैं। जीवन में प्रबल उत्साह, अदम्य शक्ति और प्रचण्ड पौरुष को भर कर हमें जीवन को नये रूप में ढालने की आवश्यकता है।

अभी भी समय है :

अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। जो चला गया है, उसे भूल जाइये। आज का यही क्षण हमारे जीवन का महान् निर्णायक क्षण है। इस क्षण में हमें अपने जीवन को नवीन शुभ संकल्पों से भरकर आगे बढ़ना है। प्रकृति की प्यारी गोद में प्रकृति के अनुकूल जीवन-यापन द्वारा हम नया जीवन प्राप्त कर सकते हैं। 'जब जागे तभी सवेरा' हम भी गोस्वामी तुलसीदासजी की तरह कह सकें—

अबलौं नसानी, अब ना नसैहौं।

—अब तक तो नष्ट किया, अब नष्ट नहीं करूँगा। मैं जाग उठा हूँ, अब कभी गफलत नहीं करूँगा। यह शुभ संकल्प हमारे जीवन मंदिर का स्वर्ण-शिखर है; इसको अपना कर हम कृतार्थ हो सकेंगे। हमारा प्रत्येक क्षण उमंग की ज्योति से जगमगा उठेगा; फिर कहाँ अन्धकार, कहाँ नैराश्य, कहाँ रोग और कहाँ शोक। जीवन मंगलमय प्रकाश की किरणों में स्नात हो जगमगा उठेगा।

जीवेम :

२. प्रकृति की गोद से दूर

वरदानों की शीतल छाया :

ईश्वर कितना करुणा वरुणालय है। उसकी अनन्त कृपाओं का कोई आरपार नहीं। मनुष्य ने धरती पर जब प्रथम-प्रथम कदम रखा, उस समय चारों ओर प्रकृति की विपुल विभूति नाच रही थी। ईश्वर ने हमें क्या नहीं दिया। एक ओर आकाश को छूनेवाले गिरि-शिखर, नाचती-थिरकती वेगवती सरिताएँ, उनका अमृत-सा मीठा शीतल जल, फूलों-फलों से लदी तरुराजि, दूर-दूर तक फैला हुआ मखमली घास का बिछावन, तारों से जड़ा आसमान, दूध-सी उजली रातें, सुनहले सुबह—चारों ओर पवित्रता, मस्ती व मोहकता !

सारी प्रकृति स्वस्थ व प्रसन्न, गाती व नाचती ! कुहू-कुहू करती कोकिलाएँ किसको रस में नहीं भर देतीं। भौंरों की मीठी गुंजार पागल-सा बना देती है। नाचते हुए मोर, कुलांचे मारते मृग छौने—कितना मोहक दृश्य, कितना मादक व नयनाभिराम नजारा !

प्रकृति की गोद में चारों ओर जीवन का रस छलक रहा है। हवाएँ स्वर्ग का सन्देश लेकर बिखर रही हैं। सुनहली उषा हमेशा सुबह हमारे लिए क्या नहीं लाती, खुले हाथों खुशबू लुटाती है ! आसमान सभी पर मोती न्यौछावर करता है। तारों जड़ी रातें गुपचुप जीवन में रस की बूंदें ढ़रकाती हैं। नीली-पीली बदलियाँ जीवन धारा-सा बरसती रहती हैं। प्रकृति के इन वरदानों की शीतल छाया में आज हम कितने दयनीय हैं। कितने रंक और कितने अभागे !

हम प्रकृति की गोद से दूर भाग आये ! वरदानों की शीतल छाया से दूर हट कर जीवन के सूखे रेगिस्तान में भटक आये हैं। हमने जान-बूझ कर अपने चारों ओर जलती बालुकाराशि का घेरा लगा लिया है, चारों ओर लू-लपटों को सुलगा लिया है और हम भीतर बन्द कर बैठ गए हैं और जलते-कराहते, रोते-बिलखते —बाहर झाँक कर भी नहीं देखते। हमने अपने को खुद कैद कर लिया है, हमने अपने को खुद बीमारियों के फन्दे में डाल रखा है, चारों ओर जो रस बरस रहा है, जीवन व स्वास्थ्य का वरदान बिखर रहा है—उससे दूर भाग कर हम कहाँ, कितनी दूर निकल आये !

हम इतने दूर निकल आये कि अब चिल्लाकर कहना भी अरण्य रोदन होगा कि वापस लौट चलो—प्रकृति की प्यारी गोद में, नदी के किनारे, आश्रम की छाया में, शीतल निकुंजों व सघन तरु तले !

नगरों के घेरे में :

हम प्रकृति से बहुत दूर निकल आये अब, लौटना मुश्किल है। गाँव उजड़ रहे हैं, चारों ओर बढ़ते हुए शहर, बड़े-बड़े महानगर ! जन संकुल शहर, अजगर की तरह अलस भाव से फैलती पीच की काली सड़कें, चारों ओर ईंट व पत्थर की उभरती दुनिया, धूल व धुएँ के उठते हुए गर्द गुब्बार, गन्दे नालों में कीड़ों की तरह किलबिलाते इन्सान। सारा जीवन बनावटी ! न स्वच्छ स्वच्छन्द हवा, न बहता शीतल जल, न फैलती सूरज की किरणें और न चारों ओर छिटकती चाँद की चाँदनी। गन्धर्व नगर की तरह आज के बिजली से जगमाते शहर, जिन्दगी को न दिन को चैन और न रात को आराम।

देर-देर तक जागना, आधी-आधी रात तक बन्द सिनेमा घरों में घुटे-घुटे वातावरण में जिन्दगी का पीला पड़ना, मुरझाना, चाय पर चाय, काफी पर काफी के ढरकते प्याले—सभी जीवन में एक घूँट, एक मादक घूँट, उत्तेजक, जीवन को चंचल बना दे, पागल बना दे, मदहोश बना दे—ऐसा तेज नशीला रूप।

आज हमारा देश जीवन के सरल पथ को छोड़कर पाश्चात्य जीवन की ओर अन्धा होकर दौड़ रहा है। उसके सामने आदर्श है—योरप का, जहाँ शान्ति नहीं, शराब का उफनाता हुआ दरिया बहता है और लोग उसमें डूबते-उतराते हैं। हमारे सामने दौड़ है—अमेरिका की, जहाँ दुनियाँ में सबसे ज्यादा धन; पर जहाँ के लोग जीवन से परेशान, नींद जहाँ हराम है और लोग नशीली गोली खाकर नींद की इन्तजार करते रहते हैं।

अब सुबह जल्दी उठना तो स्वप्न बनता जा रहा है। ऐसे सौभाग्यशाली बहुत कम हैं जिनके भाग्य में क्षितिज पर उगते हुए सूर्य को देखने बदा है। जब सूरज आसमान की सब दिशाओं को अपने अनुराग से लाल बनाता है। और जब विहगवृंद मीठी सुरीलीतान से सारे आसमान को गुँजाया करता है, उस समय लोग बिस्तरों पर पड़े रहते हैं। और जब सूरज ऊपर चढ़कर इधर-उधर झरोखों, खिड़कियों से भीतर झाँकने का प्रयास करता है, उस समय ये भारत माता के सपूत लाड़ले बिस्तरे पर पड़े उनींदी असलाई आँखों को मलते जागते हैं और बिना कुल्ला किये बेड टी ही की रट लगाये रहते हैं और मुँह में सुलगती धुंआँ फेंकती

सिगरेट! यह है हमारी मिथ्या जिन्दगी का काला पहलू, आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध के नीचे बसा हुआ नारकीय जीवन का घना अँधेरा! इनसे लाख दर्जे अच्छे हैं, वे इन अपटूडेट नौजवानों की दृष्टि से बूढ़े पुराने, पुरानी रूढ़ियों के फकीर ही सही—जो ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर, स्नानादि से निवृत्त होकर मंदिर, देवालय जाते हैं।

आसमान से दूर भागती हमारी जिन्दगी :

हवा, पानी और मिट्टी का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है; लेकिन आसमान भी किसी से कम महत्वपूर्ण नहीं। कहना तो यह चाहिए कि आसमान के विना हमारी एक क्षण भी स्थिति नहीं। ऊपर जो नीला आवरण है, परम व्योम है, अन्तरिक्ष है, वही आकाश नहीं है। आकाश हमारे चारों ओर है, हमारे बाहर है, हमारे भीतर है, हमारे ऊपर है, नीचे है, हमारे इर्द-गिर्द है। आकाश हमारे सब तरफ परिव्याप्त है। आकाश का अर्थ है—थोथ, शून्य अवकाश।

लेकिन, आज दुर्भाग्य से कृत्रिम सभ्यता की चकाचौंध में आकाश से हमारी जिन्दगी भागने में लगी है। हमारे शरीर का आकाश से सम्बन्ध कम-से-कम होता जा रहा है।

बड़े-बड़े आलीशान कमरे, लम्बे-चौड़े पलंग, उन पर ऊनी कम्बलों व रजाइयों से लिपटें मुँह ढके लोग—ऐसा लगता है, जैसे हम आकाश से घबड़ाते हैं या उससे घृणा करते हैं। इतना विशाल, पर हमारे लिये अन्धकूप कोठरी है।

लोग घूमने जाते हैं, चारों ओर वस्त्रों से अपने को बुरी तरह लपेट लेते हैं। कहीं हवा का संचार तक नहीं, सारे अंगों का आकाश से संस्पर्श नहीं। आकाश व शरीर के बीच में एक दुर्भेद्य दीवार। खुली हवा और मुक्त नीले आसमान के नीचे भी ये घूमने-फिरने वाले—एकदम तंग अन्ध गलियों में रहनेवाले जैसे हो जाते हैं।

यदि हम स्वस्थ रहना चाहते हैं, तो हमारा आसमान से खूब गहरा व अटूट सम्बन्ध रहना चाहिए।

पेट में आकाश :

पेट में आकाश रहने दीजिये। यह स्वास्थ्य की पहली कुंजी है। पेट को ठसाठस व ठूस-ठूस कर भरना, भीतर के आकाश को कम करना, बीमारियों

को निमंत्रण देना ह। ज्यादा खानेवाले सुस्त, रुग्ण व निकम्मे हो जते हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' सभी वातों के लिये लागू है। कुछ लोग यह समझते हैं कि ज्यादा खाने से शरीर की शक्ति वढ़ती है। यह भ्रान्त चिन्तन का दुष्परिणाम है। कम खाना और गम खाना यह स्वास्थ्य का मूल मंत्र है। पेट में अवकाश रहने से श्वासोच्छ्वास-क्रिया सुविधा से होती है, पाचन-क्रिया अपना कार्य सम्यक् प्रकार से करती है। मन प्रसन्न व प्रकृतिस्थ रहता है।

आकाश की साधना :

शरीर पर वस्त्रों का महत्व केवल सौन्दर्य भावना की ही दृष्टि मात्र से नहीं है, लज्जा-निवारण व शीत-घाम के निवारणार्थ भी उनका महत्व है। लेकिन, आज तो हम वस्त्रों को नखसिख तक इस वुरी तरह लपेट लेते हैं कि वस्त्रों और हमारे शरीर के बीच में आकाश विल्कुल रह नहीं पाता। इस प्रकार वुरी तरह वस्त्रों को लादना स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद है। वस्त्र ढीले व छिद्रल हों, जिससे वस्त्रों और शरीर के बीच में आकाश रह सके। वस्त्रों और शरीर के अंग-प्रत्यंगों के बीच आकाश रहना चाहिए, इससे शरीर सहिष्णु व पुष्ट वनता है। शरीर के चर्म पर चमक व दीप्ति आती है।

जिस मकान में हम रहें, उसके कमरे वड़े-वड़े हों। यदि कमरे छोटे हों, तो उसमें वातायनों व गवाक्षों का पूरा प्रवन्ध हो। इससे हवा खूव मिलेगी और आसमान का आनन्द भी प्राप्त होगा।

गर्मी में, वसन्त तथा शरद् ऋतु में खुले आकाश के नीचे लेटना, नीले विस्तीर्ण मुक्त गगन की अनन्त शोभा को निहारना तथा वादलों के रंग-विरंगे व वदलते दृश्यों को देखना—हमारी मानसिक व शारीरिक शक्तियों को जगानेवाला होता है।

हम चाहे कहीं जावें, कहीं रहें; आकाश हमारे सिर पर पैरों तले चारों ओर साथ लगा है। आकाश की ओर देखने, उसके साथ एकाकार होने या उससे हिल-मिलकर खेलने का अवकाश, आज हमारे पास नहीं है।

हम नदियों का, सरोवरों का, प्रकृति की सुरम्य वनस्थली का, गिरिशिखरों का, गरजते सागरों का—हमेशा आनन्द नहीं ले सकते हैं। शहरों में ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ हैं, धूल-धुएँ से भरी आज की जिन्दगी है। हम प्रकृति से दूर हटते जा रहे हैं। लेकिन, आकाश हमारे ऊपर-नीचे चारों ओर भगवान् की अनन्त कृपा की तरह फैला हुआ है। उससे सम्वन्ध रखना हमारे लिये अत्यन्त सरल है।

आकाश का यह तत्व सूक्ष्म है, अदृश्य है, आकाश जो अपनी व्यापकता व निःसंगता के लिए प्रसिद्ध रहा है, वह शारीरिक व मानसिक स्वस्थता, प्रफुल्लता व स्फूर्ति देने में बहुत सहायक है।

पेट में आकाश रहे। रोमकूपों में आकाश रहे, वे विजातीय द्रव्यों से रुद्ध न हों। उपवास के द्वारा भी यह आकाश की साधना चालू रहे। वस्त्र व शरीर के बीच में भी पर्याप्त आकाश रहे। मकान, सड़क, कमरे, बैठकें—सभी में आकाश के लिए पर्याप्त अवकाश रहे।

आकाश के अनन्त विस्तार को, उसके असीम सौन्दर्य को, कोटि-कोटि तारिकाओं से विजड़ित उसकी रूप छटा को देखने में हमारा लगता ही क्या है? आकाश की गहन नीलिमा हमें एक ओर विस्मय अवाक् करती है, तो दूसरी ओर गगन विहारिणी कल्पना के पंखों को मुक्त कर खुले अनन्त क्षेत्र में विचरण करने का सुनहला अवसर प्रदान करती है।

विश्ववन्द्य बापू ने अपनी दूर दृष्टि से आकाश-साधना के महत्व पर अनुभूति भरा प्रकाश डाला है। उन्हीं के शब्दों में आकाश के साथ मेल साधने के लिये मैंने जीवन में अनेक झंझटें मोल ली हैं। घर की सादगी, वस्त्रों की सादगी, रहन-सहन की सादगी बढ़ाकर एक शब्द में कहूँ और हमारे विषय से सम्बन्ध रखने वाली भाषा में कहूँ तो मैंने उत्तरोत्तर खालीपन बढ़ाकर आकाश के साथ सीधा सम्बन्ध बढ़ाया है। यह भी कह सकता हूँ कि जैसे-जैसे यह सम्बन्ध बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा आरोग्य बढ़ता गया, मेरी शान्ति बढ़ती गई, मेरा सन्तोष बढ़ता गया।

हमारा यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि हम अपने को स्वस्थ व प्रसन्न रखने की स्वार्थ-भावना से ही सही, आकाश के साथ अपने सम्बन्ध को जोड़ें। सादगी, आडम्बर शून्य जीवन, परिग्रह रहित जीवन बिताना—आकाश तत्व की साधना है।

आज हम आसमान से दूर भागने की दिशा में बढ़ रहे हैं, संम्भव की यह बीमारी हमें उसी दिशा में बलात् ढकेले जा रही हैं। अपने को दृढ़तापूर्ण ढंग से रोककर, हमें आकाश से पुनः सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। इस आकाश से सम्बन्ध स्थापन, हमारे लिए, हमारी सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए, ईश्वरीय वरदान सिद्ध होगा।

—०—

३. शरीर : एक यन्त्र

आज का युग यंत्र का युग है। जीवन के सभी काम मशीनों की सहायता से होते हैं। साइकिल से लेकर मोटरकार, हावाई जहाज, रॉकेट आदि सभी मशीनें हैं, इनके निर्माण के लिये विशाल कारखाने हैं; इनके संचालन-मरम्मत करने आदि के सिखाने के लिये वर्कशोप व कालेज बने हुए हैं। इन मशीनों को ठीक रखने के लिये पूरी सावधानी वरती जाती है। इनकी सफाई होती है, टूट-फूट की मरम्मत होती है और इनको सुन्दर व चमकीला बनाने का बराबर प्रयास होता है। इतने पर भी जरा-सी असावधानी हुई तो कभी टायर फट जाते हैं, कभी हवाई जहाज उड़ते-उड़ते गिर जाते हैं, तो कभी राकेट टूटकर बिखर जाते हैं।

ईश्वर का दिया यह हमारा मानव-शरीर भी एक यंत्र है, एक सजीव व स्वयं चलनेवाला यन्त्र। यह शरीररूपी यंत्र बहुत सूक्ष्म व जटिल है, इसकी कारीगरी अद्भुत व विस्मयकारिणी है। लेकिन, यह हमारी मूर्खता, प्रमाद व कृतघ्नता है कि इस मशीन को हम न ढंग से वरतते हैं, न ठीक तरह से चलाते हैं, न इसे पूरा विश्राम देते हैं और न इसके लिये सारे साधन जुटाते हैं।

हमें यह हक नहीं है कि हम इस यंत्र का मनमाना दुरुपयोग करें। यदि आप साइकिल को कंकड़ीली सड़क पर ले जावेंगे, तो वह जल्दी टूट जायगी; यदि आप मोटर को बालुका के टीले पर चलावेंगे तो वह फँस जायगी, मुहरें व धुएँ से ढके आकाश में मौसम की विना परवाह किये हवाई जहाज उड़ायेंगे तो वह अवश्य फेल होकर नीचे गिर जायगी। ठीक इसी तरह यह शरीर रूपी मशीन भी यदि बुरी तरह नासमझी से काम में ली जायगी, तो यह लम्बे समय नहीं चल सकेगी। इसका सारा ढाँचा ढीला, सुस्त, निकम्मा होकर ढचर-ढचर चलेगा। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस शरीर की अमूल्य मशीन को विवेकपूर्वक चलाएँ।

मशीन के लिये जिस प्रकार तेल, पेट्रोल, कोयला आदि आवश्यक है; उसी प्रकार मानव शरीर के लिए भी भोजनादि। यह भोजन ही शरीररूपी एंजिन का कोयला-पानी है।

मशीन को विश्राम चाहिए, रात-दिन चलाते रहेंगी तो वह जल्दी घिस जायगी, इसी प्रकार इस शरीररूपी मशीन की भी यही हालत है।

यह हमारा जीवन आनन्दपूर्वक चलता रहे, इसी के लिये हजारों प्रकार की मशीनें बनी हैं; लेकिन मनुष्य आज इतना जड़ हो गया है कि इन जड़ मशीनों की पूजा में तो रात-दिन लगा रहता है, लेकिन अपने पास जो चेतन, सजीव व सूक्ष्म मशीन है, उसकी बिलकुल परवाह नहीं करता। वह यह समझता है कि इस शरीर के रहते ही ये सब सुख-सुविधाएँ हैं, यह शरीर नहीं तो सब व्यर्थ।

आप का जवाब है कि हमारे पास समय नहीं, हमें दिन भर काम के लिए दौड़-धूप करनी पड़ती है। यह तर्क नहीं; यह तो आत्म-छलना है। आप के पास पड़े रहने को, इधर-उधर को, निन्दा-स्तुति करने को, सिनेमा देखने को, अनेक फालतू कामों व डाक्टरों के दरवाजे खटखटाने को समय है; लेकिन आश्चर्य है कि आप के पास इस शरीर रूपी महायंत्र की देखभाल करने को समय नहीं। दिन-रात भर में आप पाँच मिनट निकाल कर भी यह नहीं सोचते कि आपको ईश्वर ने यह मानव देह क्यों दी है, इसका उद्देश्य क्या है, यह दीर्घकाल तक किस प्रकार सुचारू रूप से चल सकेगा। ये सब महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न हैं, इनके उत्तर पर ही हमारा सारा जीवन निर्भर है।

इस मशीन की यह विशेषता है कि यह अपनी जरूरत की सारी चीजें खुद माँगती रहती है। कभी इसे भूख लगती है, कभी प्यास और कभी थकान—इन सब के द्वारा वह भोजन, पानी और विश्राम की माँग करती है। लेकिन, हम नासमझी से इस ओर ध्यान नहीं देते, इनकी अवहेलना करते हैं। जिसका नतीजा है—तरह-तरह की आधि-व्याधियाँ!

इस मशीन को पूरा विश्राम मिलना चाहिए, इससे इसकी नष्ट हुई शक्ति पुनः प्राप्त हो सकेगी। पूरे विश्राम का मतलब यह नहीं है कि इससे काम न लिया जा कर आलस्य, प्रमाद पर निद्रा में जीवन को व्यर्थ किया जाय। यदि मशीन से काम नहीं लिया जाय तो वह पड़ी-पड़ी खराब हो जाती है, उसे जंग लग जाता है; हवा, पानी व गर्द-गुब्बार से वह बदरंग हो जाती है और पड़ी-पड़ी गड़बड़ हो जाती है। इसी प्रकार शरीर का भी यही हाल है। इससे बराबर काम लिया जाय और आवश्यकतानुसार इसे विश्राम दिया जाय।

सारे वाहन चाहे वे पशु द्वारा चलाये जाते हों या एंजिन द्वारा—एक सीमा तक ही वजन उठा सकते हैं। उस परिणाम से ज्यादा वजन लादेंगे, तो वे वाहन जल्दी ही टूट जाएँगे। सब सवारियों पर सवारों को चढ़ाने और वजन लादने के खास नियम बने होते हैं; लेकिन हम कितने नासमझ हैं कि इस शरीररूपी मशीन को कामों के दुर्वह भार से बुरी तरह से लादकर घसीटते रहते हैं, जिसके बुरे परिणाम सामने हैं। इस शरीर रूपी मशीन को पूरा विश्राम दो, पूरा कार्य दो, पूरी खुराक

दो, तब कहीं जीवन सार्थक व सफल हो सकता है। एक पुरानी कहावत है, "मूरख का खाय मरै का उठाय मरै।" मूर्ख या तो ज्यादा खाकर मरता है या ज्यादा वजन उठाकर मरता है।

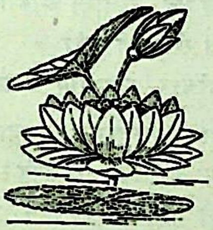
जब हम यह कहते हैं कि इस शरीर यंत्र को चलाने के लिए भोजन—कोयले पानी का काम करता है तब हमारा मतलब यह नहीं है कि भोजन को खूब ठूँस-ठूँस भरा जाय। अधिकांश लोग ज्यादा खाकर मरते हैं। वे यह ध्यान भी नहीं रखते कि शरीर को कितनी व कैसी खुराक की जरूरत है। चरपरी, चटपटी, तली हुई, भुनी हुई तरह-तरह की चीजें केवल जीभ के स्वाद या अपने चटोरेपन को तृप्त करने के लिये या झूठी नकली उत्तेजना प्राप्त करने के लिए खाते हैं। शरीर का सर्वाङ्गीण विकास करनेवाले भोज्य-पदार्थों की ओर ध्यान नहीं देते।

इस यंत्र की यह विशेषता है कि जब भी हम नासमझी करते हैं, यह हमको हमारी मूर्खता के लिये चेतावनी देता रहता है। सिर-दर्द, जी मिचलाना, बुखार, पेट दर्द, फोड़े फुन्सी, अंग शैथिल्य, आँखों की जलन, खाज-खुजली आदि सब हमारी मूर्खताओं की सूचनाएँ हैं। इनका मतलब यह है कि हम शरीररूपी यंत्र के हाथ किसी प्रकार का अन्याय करने में लगे हैं, उससे बाज आवें और रुक कर इस मशीन को ठीक करें। यों यह शरीर स्वयं अपना इलाज करता है, अपनी मरम्मत करता है। सारी प्रकृति भी इस को ठीक करने में पूरी सहायता करती है। खुला आसमान, हरी-भरी धरती, स्वच्छ शीतल हवा, मधुर जल, धीमी सुनहली उजली रोशनी—सभी शरीर की सेवा में लगे रहते हैं। लेकिन, हम इन सबकी अवहेलना कर अपनी नासमझी से शरीररूपी मशीन को जान-बूझकर कँटीले, पथरीले रास्ते पर ले जाकर इसे तोड़ते-फोड़ते रहते हैं। शरीररूपी मशीन को हम इतनी बे-रहमी से बिना देख-भाल के इस बुरी तरह चलाते हैं कि आश्चर्य होता है कि फिर भी यह अपनी ओर से पूरी कोशिश चलने की करता है।

मानव-देह देव दुर्लभ है। देवता भी इस मनुष्य शरीर को पाने के लिए तरसते रहते हैं। जब हम कहते हैं कि इस मशीन की ओर पूरा ध्यान दो, तब हमारा मतलब यह नहीं है कि इसे खूब खिलाओ, पिलाओ और आराम से रखो। नहीं; ऐसा हमारा मतलब नहीं। मनुष्य जीवन तो आखिर क्षणभंगुर है, नाशवान है। इसका खूब सार सँभार रखें तो भी एक-न-एक दिन यह अवश्य जायगा। यह शरीर भोगायतन नहीं है, इस कंचन-काया को वज्र-देह बना लें तब भी क्या हुआ! स्मरण रखें, यह शरीर तो साधन है, वाहन मात्र है—हमारा साध्य है—परोपकार करते हुए, अपने स्वरूप को पहचानना। हम इस शरीर को इसलिए स्वस्थ प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट रखना चाहते हैं कि संसार के दीन

दु:खियों की सेवा कर सकेंगे, ज्ञान का अर्जन कर सकेंगे, संसार के लिए कोई महान् कार्य करते हुए ईश्वर-सेवा में अपने को पूर्णतया लगा दें।

शरीर के लिए नहीं, योग के लिए नहीं, मौज-शौक के लिए नहीं, ऐशो-आराम के लिए नहीं, इसका महान् उद्देश्य है। हम शरीर को स्वस्थ उसी महान् उद्देश्य के पूर्ति के लिए रखना चाहते हैं। स्वार्थ व परमार्थ सिद्ध करने के लिए हमें शरीररूपी जो साधन मिला है; उसका हमेशा तय्यार, सजा हुआ, सब प्रकार से कार्यक्षय कर लें—तभी हम सब कार्य सफलतापूर्वक कर सकेंगे। यह शरीर स्वार्थ-परमार्थ, अभ्युदय व निःश्रेयस, प्रेम व श्रेय और अमृततत्व प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है; वाहन है, और हम हैं इसके वाहक।



४. स्वास्थ्य के स्तम्भ

हमारा शरीर एक विशाल भवन की तरह है। जिस प्रकार स्तम्भों पर भवन टिका रहता है, उसी प्रकार हमारे शरीर के भी ५ स्तम्भ या मूलाधार हैं, जिन पर स्वस्थ व दीर्घजीवी जीवन खड़ा हो सकता है।

१. हवा, प्रकाश व पानी,
२. युक्ताहार,
३. विश्राम, विनोद, सुस्ताना और निद्रा,
४. व्यायाम व खेल-कूद और
५. संयम, सदाचार, स्वाध्याय व सत्संग।

महर्षि चरक ने इनको 'त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति'। कहकर स्वस्थ व बलिष्ठ शरीर के लिये तीन उक्त स्तम्भ बनाये हैं—१. आहार, २. स्वप्न, ३. ब्रह्मचर्य। इन्हीं तीन का पल्लवन उक्त पाँच स्तम्भों में है। आहार का निःसन्देह महत्वपूर्ण स्थान है, इसे हमें अर्जित करना पड़ता है; लेकिन प्रकृति प्रदत्त हवा, प्रकाश व पानी भी नैरोग्य के लिये कम महत्वपूर्ण नहीं। स्वप्न के अन्तर्गत ही हम विश्राम व निद्रा को ले सकते हैं। ब्रह्मचर्य मूलतः संयम है, जिसकी प्राप्ति स्वाध्याय व सत्संग के बिना नहीं हो सकती। व्यायाम व खेल-कूद का स्थान भी नीरोग रहने के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार देह को स्वस्थ व प्रसन्न और दीर्घजीवी रखने के लिए उक्त पाँच स्तम्भ आवश्यक हैं। ये सब एक दूसरे पर आश्रित हैं। यदि युक्ताहार नहीं, तो न संयम ठहर सकता है और न गहरी नींद आ सकती है। यदि नींद न ली जायगी, तो भोजन की पाचन-क्रिया बिगड़ जायगी और संयम का बन्धन टूट जायगा। बिना संयम-सदाचार के हमारा जीवन पशुवत् हो जायगा, जीवन की सार्थकता ही जाती रहेगी। व्यायाम के बिना न भोजन ठीक तरह से पच सकेगा और न गहरी नींद आ सकेगी। ये एक दूसरे के सभी सहायक हैं। इन सबका उपयोग अपनी सीमा में है। सीमा का ज्योंही अतिक्रमण होगा—जीवन एक संघर्ष भूमि बन जायगा, चारों ओर खींचतान होने लगेगी।

१. हवा, प्रकाश और पानी :

हवा, प्रकाश और पानी––तीनों के बिना शरीर की स्थिति नहीं। ईश्वर को अभी भी कोटिशः धन्यवाद है कि हवा, प्रकाश और पानी की दूकानें नहीं खुली हैं और मनुष्य थोड़े से परिश्रम से शुद्ध हवा, निर्मल प्रकाश और सुस्वादु जल विना मोल के प्राप्त कर सकता है। लेकिन, यों मनुष्य ने अपने जीवन की कृत्रिमता से इन सुलभ तत्वों को भी दुर्लभ बना लिया है। हवा भी आज के युग में है, ठीक प्रकार से मिल पाती है। वस्तियाँ घनी हैं, मकान ही मकान चारों ओर, वहाँ हवा न शुद्ध है और न प्राणपद, नदियों, घने वृक्षों और दूर-दूर गिरि कन्दराओं से बहकर आनेवाली फूलों की खुशबू से सनी हवा कहाँ। बन्द कमरे, केवल पंखों के चलने से जो उसी घुटी हुई हवा में गति पैदा की जाती है, उससे ऐसी हवा में प्राण-पोषक तत्व कहाँ ?

अतः नीरोग रहने की पहले की शर्त है कि खुले स्थानों में वृक्षों को छूकर आने वाली हवा का जितना आनन्द लिया जाय, उतना ही स्वास्थ्यप्रद है। यही हाल प्रकाश का है। अब न चाँद की उजली रोशनी का आनन्द मिल पाता है और न सूरज की सुनहली हल्की मधुर धूप का। सघन वस्तियों के कारण हमारे कमरों में प्रकाश भी पूरा नहीं पहुँच पाता। छतों का आनन्द भी नहीं। तल्ले पर तल्ले मकान के उठ रहे हैं और हम लोग प्रकाश से वंचित हो रहे हैं। केवल विद्युत् का कृत्रिम प्रकाश मिल पाता है। रात और दिन हम लोग बनावटी विद्युत्-प्रकाश में रहते हैं––यह हमारी आँखों के लिये सब प्रकार से हानिप्रद है।

बहते पानी का वह आनन्द कहाँ! गहरे कुओं का पानी भी हमारे लिए सुपच्य व पुष्टिकारक होता है। अब तो नलों का पानी मिलता है, या बनावटी उपायों से ठण्डा किया हुआ पानी या बर्फीला। पानी—पानी के ये बनावटी रूप हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। कुएँ का जल मिट्टी के बर्तन में ठण्डा हुआ ही हमारे लिए लाभप्रद है। बर्फ का प्रयोग आजकल दुर्भाग्य से बहुत बढ़ गया है। अत्यन्त बर्फ का ठण्डा जल एक बार चाहे हमें आनन्दप्रद मालूम हो, पर परिणाम में यह घातक है।

शरीर को नीरोग रखने का पहला उपाय है—शुद्ध हवा का सेवन, धूप का का स्नान और निर्मल निर्दोष बहते जल का सेवन।

२. युक्ताहार :

शरीर का ठीक तरह से स्वस्थ और दीर्घजीवी रखने में आहार का सबसे महत्व-

पूर्ण स्थान है। हमें कब किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, इसका एक पूरा शास्त्र है। साधारण लोग इतना नहीं जान सकते। लेकिन, इतना तो जान ही लेना चाहिए कि हम भोजन के लिए जिन्दा नहीं हैं, जिन्दा रहने के लिए भोजन करते हैं। भोजन को सुस्वादु वनाने का प्रयत्न ज्यादा होता है और इसके लिये उसकी शक्ति चाहे नष्ट कर दी जायगी। सादा भोजन, दूध, दही, घी, मक्खन, हरे साग, सब्जी, फल—हमारे शरीर की सात्विक संवर्धना में वहुत सहायक हैं। मिर्च-मसाले, तेल से तली चीजें गरिष्ठ होती हैं और इनसे अग्निमान्द्य हो जाती है। भोजन ठीक समय पर नियमित होना चाहिए। भोजन की अति मात्रा शरीर को स्थूल व निस्तेज कर देती है, तरह-तरह की बीमारियाँ आ घेरती हैं। नियमित व सात्विक भोजन हमारे शरीर को स्वस्थ, मन को प्रसन्न और आत्मा को वलिष्ठ वनाता है। चेहरे पर कान्ति आती है और शरीर में कार्य करने की स्फूर्ति।

युक्ताहार विहार—स्वस्थ रहने की कुंजी है।

३. विश्राम, विनोद, सुस्ताना व निद्रा :

भोजन के वाद तुरन्त कार्य पर लग जाना ठीक नहीं। शरीर को विश्राम भी मिलना चाहिए। विश्राम के समय शरीर की मशीन अपनी कमी को पूरा करती है, अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करती है और नवीन कार्य करने के लिए शरीर को सक्षम वनाती है। जीवन में हँसी, मजाक व विनोद भी आवश्यक है। इससे शरीर प्रफुल्ल रहता है, आज के इस यंत्र-युग में इतनी परेशानियाँ हो गई हैं कि सव के जीवन में तनाव आ गया है। स्नायविक संस्थान में वहुत अधिक तनाव है। हँसी, मजाक व विनोद की सहायता से जीवन सहज व सुगम वन गया है, एक प्रकार की अनावश्यक गंभीरता, मुर्दागनी या मुहर्रमीपन दूर हो जाता है और जीवन में इस का संचार हो जाता है। इससे पाचन-क्रिया अच्छी होती है।

दिन में यदि मनुष्य तीन-चार वार दस-दस मिनट के लिए भी यदि शरीर को निढाल कर, एकदम ढीला छोड़ सुस्ताने की आदत डाले, तो वह अपने में महत्व-पूर्ण परिवर्तन का अनुभव करेगा। उसकी हजारों मानसिक परेशानियाँ दूर हो जावेंगी, वह अपने को हल्का व फुर्तीला अनुभव करेगा।

आज मनुष्य के सामने सव से गंभीर समस्या यह है कि वह नींद नहीं ले पाता। वहुत लोगों को उन्निद्र रोग हो जाता है। नींद आना उनके लिए वहुत कठिन हो जाता है। नींद के अभाव में उनका जीवन दूभर हो जाता है। सारा जीवन यन्त्रालय का एक केन्द्र वन जाता है। नींद के अभाव में या तो वे शराब की ओर

दौड़ते हैं और अनेक प्रकार की मादक वस्तुओं का सेवन करते हैं, निद्रा लानेवाली अनेक दवाइयों का सेवन करते हैं। इसका नतीजा यह है कि आत्महत्या, उन्माद व प्रमाद का बोलबाला दुनिया में हो गया है।

यदि ठीक मात्रा में सात्विक भोजन सेवन किया जाय, शारीरिक परिश्रम किया जाय और मन को व्यर्थ चिन्ताओं से दूर रखा जाय, तो निःसन्देह गहरी नींद आवेगी। गहरी नींद हजार दवाइयों से ज्यादा प्रभावशाली और स्वास्थ्य प्रदान करनेवाली है।

४. व्यायाम और खेल-कूद :

आज लोगों को नाटक, सिनेमा, नाच, गान का शौक खूब है; लेकिन, अपने शरीर को सबल व शक्तिशाली बनाने की ओर ध्यान नहीं। नियमित व्यायाम दीर्घजीवन की गारंटी है। हम लोगों को व्यायाम करने की आदत डालनी चाहिए। बहुत से पेचीदे व्यायामों में न उलझ कर सरल व्यायाम प्रतिदिन करने चाहिए। व्यायाम ज्यादा मात्रा में न हों, इससे स्नायु शिथिल हो जाते हैं। जैसे ही थकान मालूम हो व्यायाम बन्द कर देना चाहिए। साधारणतः दण्ड-बैठक, सरल आसन व्यायाम हैं। यदि व्यायाम करने में मन न लगता है तो खेलों की ओर अभिरुचि बढ़ानी चाहिए। खेलों से मनोविनोद के साथ-साथ अनुशासनप्रियता भी जगती है। प्रातः और सायं भ्रमण की आदत तो डाल ही लेनी चाहिए। भ्रमण सबसे बढ़िया और लम्बा चलनेवाला हल्का व्यायाम है, ऐसा व्यायाम जो सर्वाङ्गीण है। व्यायाम से सभी अंग पुष्ट होते हैं, दूषित तत्व बाहर निकलते हैं, रोम रन्ध्रों से स्वेद बहता है, वे मुक्त रहते हैं, इससे विजातीय द्रव्य बाहर फेंक दिया जाता है। शरीर कान्तिमान, लावण्यमय और ऊर्जस्वित बनता है, व्यक्तित्व का नूतन विकास होता है। चेहरा प्रभावशाली, शरीर सुगठित, सुन्दर और सुडौल बनता है।

५. संयम, सदचार, स्वाध्याय और सत्संग :

शरीर चाहे कितना ही स्वस्थ क्यों न हो, यदि वह मन के चक्कर में आ गया, इन्द्रियों का दास बन गया तो सारा बना-बनाया मकान ढह जायगा और ताश के मकान के समान क्षण में बिखर कर ढेर हो जायगा। शम व दम—मन का निग्रह व इन्द्रिय जय हुए बना सब व्यर्थ है। वासना की आँधी में यदि मनुष्य उड़ना शुरू करता है, तो बड़े-बड़े शक्तिशाली वीरों का नाश हो जाता है। आज भारत

के लोग भी पश्चिम की अन्धी नकल करने में लगे हैं, रात-दिन उत्तेजक वातावरण, संयम का अभाव, इन्द्रियों की गुलामी, भोग-राग का आधिक्य बढ़ रहा है। जीवन में संयम के स्थान पर मुक्त भोग की प्रशक्ति बढ़ रही है। पर, याद रखें जो व्यक्ति संयम के महत्व को नहीं जानता, उसमें भोग की शक्ति भी नहीं आ सकती। शिथिलेन्द्रिय, क्लीव व कायर वे ही होते हैं, तो जो रात-दिन भोग के कीचड़ में फँसे रहते हैं। दुर्भाग्य से आज सिनेमा की बीमारी बेहद बढ़ती जा रही है, जिसके कारण झूठे प्रेम का दिवानापन, इन्द्रियों की गुलामी और भोग की उत्तेजना बढ़ रही है। ऐसे भयंकर समय में संयम का काम भी लोगों को अखरता है। संयम को वे पुराने लोगों की नासमझी की बात समझते हैं और कहते हैं कि सदाचार के मानदण्ड बदल गए हैं। सभी पतंग की तरह नाश की ज्वाला में पड़ते नजर आ रहे हैं। समझते हैं कि हम जीवन का रस लूट रहे हैं। अल्पायु में रोग-ग्रस्त, शोक-ग्रस्त, निस्तेज हो, मुरझाये अरमान, मन की घुटन, निराशा की पीड़ा—लेकर आज का नवयुवक राष्ट्र के सामने हैं। उनमें न पौरुष का तेज है, न आँधी-तूफानों से भिड़ने की शक्ति, न प्रचण्ड उमंग, न अनन्त आशा! इसलिए आज इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने जीवन में संयम को ऊँचा स्थान दें और संयम के आधार पर जीवन का निर्माण करें।

संयम व सदाचार के लिए आवश्यक है कि हम श्रेष्ठ ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। महापुरुषों की पुनीत वाणी के रसास्वादन से हमारा जीवन ऊर्ध्वगामी बनेगा, हम शुभ संकल्पों से अनुप्राणित होंगे, महान् उद्देश्य से प्रेरित। हम अपने जीवन में नये अनुभव व नूतनता को प्राप्त कर विश्वास व साहस के साथ जीवनयात्रा कर सकेंगे। मार्ग की हजार-हजार विघ्नाएँ हमारे लिए फूल में बदल जाएँगी। हमारा जीवन सुरभिमय, आनन्दमय और मंगलमय हो जायगा।

लेकिन, यह तभी संभव है जब हम सत्संगति करें। महान् पुरुषों के सान्निध्य में रहकर, उन ज्ञान-वृद्धों के चरणों की सेवा कर जीवन की सार्थकता प्राप्त की जा सकती है। महापुरुषों, सन्त-महात्माओं, ज्ञानियों की वाणी से निःसृत एक-एक शब्द हमारे लिए अमृत का काम करेगा। सत्संगति प्राप्त किये बिना कल्याण कहाँ।

आज के युग में सबसे बड़ी कमी है—सत्संगति की। बिना सत्संगति से जीवन का सुधार नहीं।

सर्वाङ्गीण रूप से स्वस्थ, नीरोग व शक्तिशाली बनाये रखने के लिए युक्ताहार-विहार, विश्राम, व्यायाम और संयम की बहुत आवश्यकता है। ये ही वे पंच स्तंभ हैं, जिन पर जीवन के विशाल व भव्य प्रासाद का निर्माण हो सकता है।

५. स्वास्थ्य व स्वच्छता

'स्वच्छता ही स्वास्थ्य है, ईश्वर के वाद दूसरा नम्बर स्वच्छता का है।' यह कथन अक्षरशः सत्य है। स्वस्थ रहने के लिए स्वच्छता की सबसे वड़ी आवश्यकता है। हमारे मनीषी धर्माचार्यों ने स्वच्छता और धर्म को सुन्दरता से जोड़कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। हमारा कोई भी धार्मिक कृत्य विना स्नानादि किये, स्वच्छ वस्त्र पहने सम्पन्न नहीं होता। भोजन के पहले भी हाथ-मुँह धोने, पवित्र, शुद्ध स्थान पर वैठने आदि के नियम हैं। दूसरे के हाथ की वनाई हुई चीजों को न ग्रहण करना—मूलतः स्वच्छता व पवित्रता का ही नियम है। मन्दिर में दर्शन करने जाने के लिए स्नान करना जरूरी है।

भोजन की पवित्रता व सात्विकता, शारीरिक शुचिता व शुद्धता, वस्त्रों का धुला हुआ व स्वच्छ होना—हमारे धर्म के अनिवार्य अंग हैं। स्वच्छता को धर्म में इस प्रकार संग्रथित कर हमारे पूर्वाचार्यों व धार्मिकों ने हमारा महान् और अनन्त उपकार किया है। अस्वच्छता का ही दूसरा अर्थ है—वीमारियाँ और स्वच्छता का अर्थ है—नैरोग्य।

यह स्वच्छता दो प्रकार की होती है—

(क) व्यक्तिगत-स्वच्छता,
(ख) सामूहिक-स्वच्छता।

(१) व्यक्तिगत स्वच्छता :

स्वच्छता का प्रारंभ व्यक्ति से है। यदि सारे व्यक्ति अपनी स्वच्छता का सव प्रकार से ध्यान रखें और अपने पास के स्थानों को भी गन्दा न होने दें, तो सारा विश्व एक स्वच्छ विश्व में वदल जायगा।

व्यक्तिगत स्वच्छता भी ४ प्रकार की है—

(क) मन सम्बन्धी,
(ख) शरीर सम्बन्धी,
(ग) भोज्य व पेय पदार्थ सम्बन्धी,
(घ) वस्त्र व उपयोग में आनेवाली अन्य वस्तुएँ सम्बन्धी।

(क) मन सम्बन्धी :

स्वच्छता का असली प्रारंभ मन से होता है। मन यदि गन्दा है तो शरीर को स्वच्छ रखने से क्या ! यदि मन काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर, चिन्ता, ईर्ष्या आदि दुष्प्रवृत्तियों से भरा हो, तो शरीर कभी भी नीरोग नहीं रह सकता। खेत के भीतर यदि बबूल व बेर के बीज पड़े हैं तो वे जरूर अंकुरित होकर चारों ओर काँटे ही काँटे बिखेर देंगे; इसी प्रकार यदि मन दूषित है, विकारों से भरा है, गन्दी आदतों व वासनाओं का शिकार है, तो ऐसे व्यक्ति के शरीर को हजार-डाक्टर वैद्य भी पूर्ण नीरोग नहीं कर सकते। यदि मन को निर्मल रखो, बुरे विचार न आने दो, सब से प्रेम व समता का व्यवहार करो, किसी के प्रति घृणा व हीनता का भाव न रखो। सभी प्रभु के बनाये जीव हैं, किसी पर एक-सी प्यार की वर्षा होने दो। मन को शुद्ध संकल्पों, पवित्र विचारों व भावनाओं से भरो।

याद रखिए, बीमारियों का मूल कारण मन ही है। मन केवल बन्धन और मोक्ष का ही कारण नहीं है, यह बीमारियों का भी कारण है।

पातंजल योग सूत्र में मन को निर्मल, शान्त व निस्तरंग रखने के लिये चार बातें बताई गई हैं। हम से जो ज्ञान, विद्या व बल आदि में बड़े हैं, उनके प्रति मुदिता की भावना रखो, सोचो ये सब हमारे हैं, संसार में जो महान् व्यक्ति आगे बढ़ रहे हैं, उन सबके प्रति मुदिता का व्यवहार हो। हम से जो गिरे हुए, पतित या पिछड़े हुए हैं, उनके प्रति घृणा का भाव न रखकर उनके प्रति करुणा का भाव रखो। बराबर वालों के प्रति मैत्री का भाव हो, तो नीचों व दुष्टों के प्रति उपेक्षा और सुधार का भाव हो। इस प्रकार की वृत्ति बनाने से हमारे हृदय में कहीं दाग व जलन की आग नहीं धधक सकेगी। मानसिक स्वच्छता का मतलब है—सब प्रकार की बीमारियों को जड़-मूल से उखाड़ने की शुभ शुरूआत।

(ख) शरीर सम्बन्धी :

मन की स्वच्छता के बाद शरीर की स्वच्छता का भी बहुत बड़ा महत्व है। शरीर की स्वच्छता में पहला स्थान है—स्नान का। प्रतिदिन एक बार या दो बार स्नान करना हमारा पावन कर्त्तव्य है। स्नान ढंग से करना चाहिए। ठण्डे या आवश्यकतानुसार शीतोष्ण जल का स्नान में उपयोग हो, मल-मल कर स्नान करना चाहिए। रोएँदार गीले तौलिये से शरीर को हलके हाथ से रगड़ने से रोम-कूप खुल जाते हैं और पसीने के रूप में बहनेवाला दूषित पदार्थ शरीर से हट जाता है। चर्म में चमक और दीप्ति आ जाती है। साथ ही कान, आँख, मुँह, दाँत, जीभ आदि सभी अंग-प्रत्यंगों की सफाई धीरज के साथ करनी चाहिए। बालों की

स्वच्छता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। तेल मर्दन, काजल, सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग, मंजन आदि सभी का उचित उपयोग सफाई के लिए आवश्यक है।

(ग) **भोज्य व पेय पदार्थ :**

हम जिन पदार्थों का सेवन करते हैं, वे सभी स्वच्छ हों। आटा, दाल, साग-सब्जी सभी की स्वच्छता आवश्यक है। वे जिन वर्तनों में पकाये या रखे जावें, वे भी एकदम स्वच्छ व ढके हुए हों। उन पर न धूल न गर्द हो और न मच्छर-मक्खी आदि ही उनको गन्दा करें। पानी स्वच्छ वर्तन में रखा है। पानी को गाढ़े कपड़े से छानकर और आवश्यकतानुसार उबाल कर पीना चाहिए। 'वस्त्र पूतं पिवेतू जलम्' हमारा पुराना सनातन सिद्धान्त है।

(घ) **वस्त्र :**

हमारे वस्त्र साफ धुले हुए व उजले हों। वस्त्रों की स्वच्छता की ओर भी ध्यान देना चाहिए। आप कपड़े चाहे मँहगे न हों, वढ़िया भड़कीले न हों, पर स्वच्छ अवश्य हों। स्वच्छ कपड़ों से मन प्रसन्न रहता है और शरीर पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ता है। साथ ही दूसरों पर भी इसका सुखकर प्रभाव पड़ता है। वस्त्र का उद्देश्य है—लज्जा निवारण, शीतघाम से रक्षा करना और शरीर की हिफाजत करना। लेकिन, दुर्भाग्य से आज वस्त्र केवल भड़कीले मात्र तो वन रहे हैं; लेकिन, उनका उद्देश्य नष्ट हो रहा है। भारतवर्ष जैसे राष्ट्र में जव हमारे पढ़े-लिखे भाइयों को गर्मी के दिनों में मोजे लादे, सूट-बूट पहने देखते हैं, तो लज्जा से सिर झुक जाता है। वस्त्र हमारे शरीर के पसीने को वाहर नहीं जाने देते। महात्मा गांधी ने मोजे व बूट पहननेवालों के शरीर से निकलने वाली दुर्गन्ध कावर्णन किया है, वे तो इस मायाजाल से छूट गये; लेकिन, आज बात-बात में गांधीजी की या सन्त-महात्माओं की दुहाई देनेवाले सादगी को तिलांजलि देकर वढ़िया, महँगे और तड़क-भड़क वाले वस्त्रों को पहन कर स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना करने में लगे हैं।

वस्त्र स्वच्छ व ढीले हैं, जिससे हवा आदि का स्पर्श शरीर से हो सके। वस्त्रों के साथ ही वे सभी प्रकार की चीजें जितना हम काम में लाते हैं, उनको भी स्वच्छ रखना चाहिए। वहुत से लोग जिन किताबों, रजिस्टरों व का पियों को काम में लाते हैं, उनको भी बुरी तरह से गन्दा कर देते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने चारों ओर स्वच्छता की एक मधुर, आकर्षक व रमणीय वातावरण का निर्माण करें। चाहे वहाँ थूक देना, पेशाव कर देना, या नाक के मल को फैला देना, बीड़ी-सिगरेट

के टुकड़े फेंकना या फलों के छिलके फैला देना, कागज फाड़कर विखेर देना—ये गन्दी और अस्वास्थ्यकर आदते हैं, जिनको दूर करना केवल नागरिक कर्त्तव्य की दृष्टि से ही आवश्यक नहीं है, वल्कि व्यक्तिगत स्वास्थ्य की दृष्टि से भी आवश्यक है।

(२) सामूहिक स्वच्छता :

आप चाहे व्यक्तिगत रूप से स्वच्छता के कितने ही पुजारी क्यों न हों, यदि सामूहिक स्वच्छता आपके चारों ओर न हो, तो आपका प्रयत्न विशेष रूप से सफल नहीं हो सकता। आसपास के रहनेवाले यदि गन्दगी रखें, नालियाँ गन्दगी से सड़ें, सड़कें व गलियाँ कूड़े व कर्कट से भरी रहें, आपके इर्द-गिर्द घूरे के ढेर हों, तो चाहे अपने कमरे को चारों ओर से गुलाव के फूलों से ही आप क्यों न भर लें, गन्दगी व दुर्गन्ध की लपेट से आप बच नहीं सकते। यदि आस-पास भ्रष्टाचार, छूत की वीमारियाँ फैल गईं, तो आप भी उनके लपेट में आ जायेंगे। अतः इस बात की वहुत वड़ी आवश्यकता है कि नगरपालिका, ग्राम पंचायत और वड़े-वड़े शहरों के निगम—सव मिलकर नागरिकों के सहयोग से सार्वजनिक स्वच्छता का संसार अभियान करें। सारा विश्व एक स्वच्छ, रमणीक और रहने योग्य हो। में भी गन्दगी, दुर्गन्ध, वदवू, मैल, कूड़ा-कर्कट—सभी मानवी प्रयासों से स्वच्छता, खुशवू व खाद में वदल कर हमारे लिए सुख-शान्ति के सन्देशवाहक बन जावें।

सार्वजनिक स्वच्छता आखिर आकाश से उतरनेवाली नहीं है। हममें से प्रत्येक का पूरा सहयोग मिले, तभी यह संभव है। रसोईघर और शयनागार से लेकर—शौचालय, गली, सड़क, राजपथ, मुहल्ला, नगर, राज्य, राष्ट्र व सभी विश्व एकदम स्वच्छ व सुन्दर वन जावें। इसके लिए सभी लोग यदि व्यक्तिगत स्वच्छता की ओर ध्यान रखते हुए सार्वजनिक स्वच्छता की ओर भी अपना कर्तव्य निभावें, तो यह सव संभव है। कुएँ, सरोवर, उद्यान, स्कूल, औषधालय, आतुरालय, मंदिर, वाजार—सभी ओर स्वच्छता ही स्वच्छता हो। क्योंकि स्वच्छता ही स्वास्थ्य है।

इस स्वच्छता का निःसन्देह भगवान् के वाद दूसरा नम्वर है। यह स्वच्छता ही धार्मिक दृष्टि से पवित्रता व शुचिता है। स्वच्छता ही हमें रोग-शोक मुक्त कर सकती है, स्वच्छता ही प्रसन्नता है, मन का उत्साह है, कर्म करने की उमंग है। यह स्वच्छता हमारे जीवन का मधु स्रोत है, जो हमें रस और प्रफुल्लता से भर देती है। स्वच्छता के साथ सादगी भी जुड़ी हुई है। सादा जीवन हमें उच्च विचार की तरफ ले जाता है।

६. रोग हम स्वयं बुलाते हैं

स्वस्थ व नीरोग शरीर में किसी प्रकार का विकार आना या किसी प्रकार की गड़वड़ी का होना रोग है। इसे शास्त्रीय शब्दों में यों कहना चाहिए कि वात, पित्त व कफ की विषमता ही रोग है और इन तीनों की साम्यावस्था स्वस्थता या नैरोग्य है। आखिर, ये रोग क्यों होते हैं, कैसे आते हैं। कुछ रोग पैतृक होते हैं, कुछ पूर्व जन्म के दोषों के कारण, कुछ छूत से लगनेवाले और कुछ बाहरी चोट आदि से उत्पन्न होनेवाले।

लेकिन, रोग का मूल कारण, हमारा अज्ञान, प्रमाद व मिथ्याहार-विहार है। रोग के कारण हम स्वयं हैं, हम खुद उन्हें बुलाते हैं। यह शरीर कहा जाता है 'व्याधि-मन्दिर' है; लेकिन, ये व्याधियाँ हमारी कई दिनों की मूर्खता का संचित फल हैं। हम सोचते हैं, आज सड़क पर खड़े होकर खुले, हवा में विना ढके खोमचे वेचनेवाले से जरा पुचके खा लिये तो क्या हुआ; कुछ गड़वड़, अंट-संट, इधर-उधर दूकानों पर खा लिया, तो क्या विगड़नेवाला है। कुछ दिनों वाद आप अनुभव करते हैं कि कभी पेट में दर्द है तो कभी शिर में पीड़ा, कभी आँखें आ गई हैं, तो कभी ज्वर का प्रकोप हो गया है। ये सभी बीमारियाँ हमारी वदपरहेजी और असंयम का परिणाम हैं।

रोग के तीन कारण हैं, पहला इंद्रियों और पदार्थों का असामान्य संयोग अर्थात् गड़बड़ का मेल। इन्द्रियों का पदार्थों के साथ हमारा तीन प्रकार से संयोग होता है। कभी तो हम इन्द्रियों के साथ पदार्थों का वहुत ज्यादा मेल कर देते हैं। खूब खाते हैं, बहुत तेज गन्ध सूँघते हैं—यह भी बीमारी का मूल कारण है—इसे कहते हैं अतियोग। कभी संयम के नाम पर संसार के सुखों और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का एकदम वायकाट कर देते हैं—इसे कहते हैं—अयोग या हीन योग—यह भी बीमारी का कारण है। कभी पदार्थों के साथ इन्द्रियों का उल्टे ढंग से संयोग कर देते हैं—अर्थात् मिथ्यायोग—यह भी बीमारी का एक कारण है। इस प्रकार अतियोग, अयोग और मिथ्या योग बीमारियों के मूल में है। वहुत छोटे अक्षर को आँख फाड़-फाड़ कर पढ़ना या मंद प्रकाश में दूर की वस्तु भी देखने का प्रयास करना यह आँख का मिथ्यायोग है। या तो बहुत सुनना, या

बिल्कुल न सुनना या गर्जन या भयंकर शब्दों का सुनना श्रवणेन्द्रिय का अन्तयोग, अयोग और मिथ्यायोग है।

समय-कुसमय का विचार न करना, अपनी शक्ति व उम्र को भूलकर काल की उपेक्षा करना, ऋतु परिवर्तन के अनुसार अपने आहार-विहार में परिवर्तन न करना, बीमारियों को आने के लिए खुला निमंत्रण देना है।

बीमारियों का दूसरा पर महत्वपूर्ण आदि कारण है—प्रज्ञापराध अर्थात् प्रज्ञा या बुद्धि में गड़बड़ होना। प्रज्ञा में बिगाड़ होने से धृति नहीं रहती, हरेक काम में उतावलापन व हड़बड़ी रहती है, विवेक व स्मृति भी हमारा साथ छोड़ देती है। हमारा चिन्तन मूल में ही दोषपूर्ण हो जाता है, जिसके कारण हम अविवेकपूर्वक अपने जीवन को चलाने लगते हैं। यह समझ लीजिए—मशीन का एंजिन जब खराब दोषपूर्ण या विकृति हो गया है तो सारी मशीन ठप्प होगी, यह निश्चित है। इसी प्रकार प्रज्ञापराध ही हमें पदार्थों के साथ हमारा असाध्य संयोग कराता है। 'प्रज्ञापराध हि मूल रोगाणाम्'।

तीसरा कारण है—परिणाम। कालक्रम के कारण जो रोग होते हैं, वे सब परिणामजन्य कहलाते हैं। जैसे बुढ़ापा एक बीमारी है—यह काल का परिणाम है। इसी ऋतु-परिवर्तन से भी हमारे शरीर में विकार होते हैं, इनका पहले ही समझ-बूझकर बचाव नहीं करेंगे, तो बीमारियाँ हमारे शरीर में आयेंगी ही।

बुद्धिमानी इसी में है कि हम जब तक जीवित रहें, स्वस्थ व प्रसन्न होकर जीवित रहें। अपनी गलतियों, भूलों व असावधानियों के कारण बीमारियों को न्योता देना, फिर उन्हें लिये हुए जीवन के छकड़े को ढचर-ढचर चलाना किसी प्रकार उचित नहीं।

हम शायद समझते हैं कि आजकल औषध विज्ञान बहुत तरक्की कर रहा है—अतः यदि हम असावधानी कर भी लेंगे तो क्या हुआ, वैद्य-हकीम या डाक्टर और उनकी हजारों की संख्या में दवाइयाँ हमारी बीमारी को दूर कर देंगी। यह विचार एकदम भ्रान्त, मिथ्या और विकृत चिन्तन का परिणाम है। याद रखें, दवाई बीमारी को मिटाती नहीं, प्रकृति जो शरीर की बीमारियों को हटाने में श्वेत शक्ति कीटाणुओं को लेकर रोग की कीटाणुओं के विरुद्ध लड़ रही है—उसको सहयोग मात्र देना। प्रकृति स्वयं इलाज करती है, दवाई उसमें सहायकमात्र है।

जो लोग दवाई पर बहुत विश्वास रखते हैं और रात-दिन दवाई पर दवाई लेते रहते हैं, वे नयी बीमारियों का उत्पादन करने की गलती कर रहे हैं। बहुत-सी विदेशी तेज नशीली दवाइयाँ रोगों को एकदम रोक देती हैं, रोगी कुछ समय के

लिए अपने को स्वस्थ अनुभव करता है, पर, उसका परिणाम भयंकर होता है। बीमारियों को ऊपरी तौर से रोक देने से फिर नवीन बीमारियों के रूप में वे फूट पड़ती हैं। एक बीमारी मिटी तो फिर दूसरी तैयार, दूसरी मिटी तो तीसरी—इस प्रकार बीमारियों की एक शृंखला से चक्कर-सा शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे वह असाध्य रोग से आक्रान्त हो जाता है और ऐसी बीमारी वह अपने अन्दर पाल लेता है कि वह फिर कभी पिण्ड नहीं छोड़ती। इंजेक्शन पर इंजेक्शन और विषैली नशीली दवाइयों का चक्रव्यूह उससे कभी छूटता नहीं और वह अकाल ही काल कवलित हो जाता है।

जीवन को प्रकृति के अनुकूल न ढालने का नतीजा है—बीमारी।

कभी रोगी यह अनुभव नहीं कर पाता कि यह बीमारी कहाँ से फूट पड़ी, वह यही कहता है कि मैंने कोई कुपथ्य तो नहीं किया, कोई अनियमितता तो नहीं की। लेकिन, सही बात यह है कि उसने जो मामूली-मामूली गलतियाँ की हैं, वे सब एकत्र होकर बीमारी बन गई हैं।

यह सही है कि हम चाहे कितनी ही सावधानी बरतें या शरीर-विज्ञान की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें, फिर भी गलती करना स्वाभाविक है। गलती करना अपराध नहीं है, अपराध तो उस समय है, जब कि हम गलती का सुधार न करें और पुनः-पुनः गलती करते जावें। इसका दण्ड तो हमें अवश्य भोगना ही पड़ेगा।

शरीर के किसी भी भाग में यदि पीड़ा का अनुभव हो, जी मिचलाता हो, शरीर थका-थका हो, उदासी हो, तो हमें समझ लेना चाहिए कि कोई बीमारी आनेवाली है। हमने जो अनियमितता बरती है, उसी का यह प्रतिफल है। अतः शीघ्र ही भोजन में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। सहयोगी के रूप में सामान्य वनौषधियाँ काम में ली जा सकती हैं। पेट की सफाई करने, कब्ज को मिटाने की जरूरत है। ऐसी स्थिति में उपवास भी बहुत उपयोगी है।

बीमारी की जब पूर्व सूचना दर्द आदि के रूप में हमको मिल गई हो, तो फिर उसके प्रति लापरवाही नहीं रखनी चाहिए।

शरीर को विश्राम देने की आवश्यकता है। ज्यादा संभावना है कि शरीर को विश्राम मिलने से रोग का आक्रमण ही न हो।

रोग के लिये यह मानना कि यह दैवी प्रकोप या ईश्वरीय प्रकोप है, किसी प्रकार उचित नहीं। ईश्वर ने आपको मानव-शरीर दिया है, समस्त प्रकृति आपकी सहयोगिनी के रूप में है, आपको सतअसत् का विवेक करने के लिए आपको मस्तिष्क मिला है, विवेचन व विश्लेषण की शक्ति मिली है, वह अनन्त करुणा सागर होकर आपको बीमारी क्यों देने लगा। बीमारी आपके अज्ञान व प्रमाद का फल है।

ज्यादातर बीमारियाँ आपके भीतर से आती हैं और फूटती हैं—अतः हम सावधान होकर, विज्ञ विशेषज्ञों के शरीर-विज्ञान के ज्ञान से लाभ उठाकर हम अपने मन को सब प्रकार के विकारों से मुक्त करें। अतियोग, अयोग व मिथ्यायोग से बचते हुए सन्तुलित विवेक से जीवन को आगे बढ़ावें। जब कभी भी किसी प्रकार की बीमारियों का विष-बीज शरीर में घुसता नजर आवे, उसे हम नष्ट कर दें और पथ्यापथ्य विवेक से शरीर को स्वस्थ, नीरोग और शक्तिशाली बनावें। स्वस्थ शरीर के बिना धर्म, अर्थ, काम, क्रोध—इन चार परम अर्थनीय पुरुषार्थों की प्राप्ति किसी भी हालत में संभव नहीं।

यदि हम नियमपूर्वक रहें तो हमारे पास रोग नहीं फटगे और कें हम पूर्ण नैरोग्य प्राप्त कर चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति कर सकेंगे—तभी हमारा मानव जीवन सार्थक व सफल माना जायगा।

हाजिरी में रहनेवाले छः डाक्टर :

आप यही चाहते हैं न कि आपको, आपके परिवार को, आपके ग्राम-नगर को ऐसे बढ़िया डाक्टर मिलें, सेवा भावी वैद्य मिलें, इन्सान से मुहब्बत करनेवाले हकीम मिलें, जो बीमारों से प्रेम का व्यवहार करें, बीमारी को हटाना अपना कर्त्तव्य समझें और सस्ते में, और यदि हो सके तो मुफ्त में इलाज कर सकें। जब भी आपको जरूरत हो, वैद्य-डाक्टर-हकीम आपके पास उपस्थित हो जायें। लेकिन, इस प्रकार के आदर्श चिकित्सकों का मिलना बहुत कठिन है।

अधिकांश चिकित्सकों की बीमारी को लम्बी खींचने, दवाइयों की उलझनों में फँसाने और अधिक-से-अधिक फीस में फँसाने और अधिक-से-अधिक फीस लेने में ही दिलचस्पी रहती है।

आप व्यर्थ ही अच्छे, आदर्श और बढ़िया डाक्टरों की खोज में परेशान हैं। प्रकृति ने आपको छः आदर्श डाक्टर सौंपे हैं, जो आपकी सेवा में सदैव सहर्ष हाजिर हैं। उनका उपयोग न लेना, उनसे लाभ न उठाना हमारी नासमझी है।

ये डाक्टर हैं—धूप, जल, विश्राम, हवा, व्यायाम और खुराक। इनका यदि हम विवेकपूर्वक उपयोग करें, तो हमें किसी भी डाक्टर के दरवाजे को खटखटाने की जरूरत नहीं।

छः बढ़िया डाक्टर आपकी सेवा में हैं रहते।
नहीं माँगते फीस और जो दूर बीमारी करते॥

सूरज की किरणें, जल मीठा, शीतल मन्द हवाएँ।
सुस्ताना, कसरत, खुराक, फिर छोड़ो सभी दवाएँ ॥

(१) **धूप**—नीरोग रखने में धूप का बहुत वड़ा स्थान है। सुवह-शाम सूरज की मन्द किरणें स्वास्थ्य के लिये सब प्रकार से उपयोगी हैं। हमारे रहने का स्थान, कार्य करने का दफ्तर प्रकाश से परिपूर्ण रहना चाहिए। विद्यार्थी जहाँ पढ़ते हैं, वे स्थान खुले, प्रकाशवाले हों। जो स्थान अंधकार से भरे हैं और जहाँ सूरज की किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ तरह-तरह की बीमारियों के फैलने की गुंजाइश है। जहाँ ज्यादा सर्दी पड़ती है या कुहरा छाया रहता है, वहाँ के लिये तो सूरज की रोशनी का भी ज्यादा महत्व है। रश्मि-स्नान ऐसे स्थानों के निवासियों के लिये स्वस्थ रहने का एक आवश्यक साधन है।

(२) **जल**--पानी पीने और स्नान करने के तो काम आता ही है, इसका उपयोग यदि विवेकपूर्वक किया जाय, तो यह भी एक अच्छे डाक्टर का काम करता है। पानी कब पीना, कितना पीना, ठण्डा पीना, उवाल कर पीना, गर्म पीना या कदोष्णा पीना—इन सव का समयानुसार उपयोग बीमारियों को हटाने का एक आवश्यक साधन है। स्वच्छ, उवाला हुआ, शीतल पानी केवल प्यास को ही नहीं बुझाता, पाचन-क्रिया और रक्त के अभिसरण में पूर्ण सहायक होता है। गीली मिट्टी का सत्व चिकित्सा में महत्वपूर्ण स्थान है। कटि-स्नान, वाष्प-स्नान आदि जल के ही नाना प्रयोग हैं। उषः पान हमारी विकृतियों को दूर हटाने और शरीर के उत्ताप को शान्त करने में अमोघ औषध है।

(३) **हवा**--'सौ दवा एक हवा' हमारी पुरानी कहावत है। इसमें मनुष्य जाति के गहरे अनुभव का सत्य निहित है। हवा हमारे जीवन का आधार है। इसी पर हमारा स्वस्थ रहना निर्भर है। शुद्ध हवा का मिलना हमारे कृत्रिम जीवन में कठिन हो रहा है। धूल, गर्द, गुव्वार, धूम व दुर्गन्ध—हवा को जहरीला वना देते हैं। हवा की शुद्धता को वढ़ानेवाली हरियाली से भी हमारा सम्पर्क कम हो रहा है। हमको शुद्ध हवा मिल सके, इसके लिये सुवह-शाम खुले मैदानों व हरे-भरे खेतों के पथों में टहलना--अत्यन्त आवश्यक है। गहरा व लम्वा श्वास लेने की आदत डालिये, यह आदत हमारी दूषित हवा को वाहर फेंकती है और हमें प्राण-वायु से भर देती है।

(४) **सुस्ताना**—शरीर एक मशीन है, एक चेतन यंत्र है। इससे हमें वहुत लम्बे समय तक काम लेना है, अतः इसे सावधानी से रखने की जरूरत है। एक मामूली मशीन को भी जव हम ठीक करवाते हैं, उसकी देखभाल करते हैं, मरम्मत

करते हैं और उसे विश्राम देते हैं, तब शरीर को भी किस प्रकार बिना विश्राम दिये लम्बा चलाया जा सकता है। जिस प्रकार स्वस्थ रहने के लिये खान-पान, हवा, पानी, मिट्टी आदि का महत्व है, उनसे कम महत्व विश्राम या सुस्ताने का नहीं है। विश्राम करते समय सारे अंगों में तनाव कम होता है। होना तो यह चाहिए कि विश्राम के समय शरीर को एकदम शिथिल, दिमाग को चिन्ता शून्य और अपने को सर्वथा निश्चिष्ट कर दिया जाय। विश्राम के समय शरीर के टूटे हुए स्नायु तन्तु पुनः नये बनते हैं, शरीर के कमजोर अंगों की आराम से मरम्मत होती है, शक्ति का संचय होता है और उसके बाद हम जीवन के भावी संघर्ष के लिये अपने को सक्षम पाते हैं।

(५) **कसरत**—शरीर के पूर्ण स्वस्थ और कार्य तत्पर रहने में कसरत का भी अपना विशिष्ट स्थान है। व्यायाम अनेक प्रकार के हैं। प्राचीन, नवीन, भारतीय, पाश्चात्य आदि भेद के अलावा प्रान्त-भेद व रुचि-भेद के कारण भी अनेक प्रकार के हैं। साधारणतः यही कहा जा सकता है कि शरीर को पुष्ट व कार्य-शक्ति से सम्पन्न बनानेवाले व्यायामों में आसनों का ऊँचा स्थान है। पर आसन को ठीक गुरु से यदि न सीखा जाय, तो हानि की पूरी संभावना है। सभी लोगों के काम के दो व्यायाम हैं—प्रातः भ्रमण और तैरना। प्रातः भ्रमण एक इस प्रकार का सर्वजनप्रिय व्यायाम है, जो जीवन भर निभाया जा सकता है, जो सरल और बेहद लाभप्रद है। यह एक प्रकार का सर्वाङ्गपूर्ण व्यायाम है। तैरना भी सभी अंगों को पुष्ठ और कार्य-शक्ति सम्पन्न करनेवाला व्यायाम है। टहलने के नाम पर मित्रों से गप-शप करना और दिन भर की परेशानी और दफ्तर को लादे हुए जाना, किसी प्रकार उचित नहीं। इसी प्रकार तैरने के स्थान सुन्दर, स्वच्छ और निरापद हों, तभी तैरने से पूरा लाभ हो सकता है। बँधे हुए पानी की अपेक्षा खुला व बहता हुआ जल शरीर को अधिक स्फूर्तिमय और सक्रिय बनाता है।

(६) **खुराक**—बीमारियों के मूल में भोजन है। यों तो सभी खाते हैं, पर खाने का विवेक हम में नहीं। अधिकांश लोग भोजन पर ध्यान नहीं देते। या तो गरिष्ठ, दुष्पाच्य और घृतावत भोजन को लोग पसन्द करते हैं या फिर चरपरा, चटपटा, मसालेदार और तला हुआ। ये दोनों तरीके हमारे अज्ञान के सूचक हैं। एक कहावत है, लोग तलवार से इतने नहीं मरे, जितने जीभ से। सचमुच लोग जीभ के चटोरेपन को राजी करने में लगे रहते हैं। फल, हरी सब्जी, मधु, दूध, मट्ठा, अंकुरित अन्न—हमारे लिये अमृतोपम आहार हैं; उसे तिलांजलि देकर मनुष्य जाति पाक-शास्त्र के भारी भुलावे में आकर अपने प्रति घोर अन्याय का

परिचय दे रही है। भोजन को विगाड़ कर, छौंककर, तलकर उसकी प्राकृतिक शक्तियों को मार दिया जाता है और फिर रह जाता है एक विकृत स्वाद !

इस प्रकार हमारी सेवा में हर वक्त छः डाक्टर तत्पर हैं। यदि हम इनका विवेकपूर्वक उपयोग करें, तो हमें वैद्यों, डाक्टरों व हकीमों के चक्कर में आने की जरूरत नहीं। ये डाक्टर, हमेशा हाजिर हैं, जो न फीस माँगते हैं और न खुशामद चाहते हैं।

७. स्वास्थ्य-रक्षा के सरल नियम

हमारा स्वास्थ्य ठीक है, तब संसार हमारे लिये हैं। जो वीमार हैं, उनके लिये संसार नहीं। स्वस्थ कौन नहीं रहना चाहता, सभी चाहते हैं कि वे नीरोग रहें और जीवन के सुखों का उपयोग करें। इसके लिये यों तो ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे पड़े हैं। हम यहाँ इस अध्याय में स्वस्थ रहने के सभी सरल नियम वता रहे हैं, जिनको व्यवहार में लाने से मनुष्य आनेवाली वीमारियों से अपने को वचा सकता है।

यों सभी विषय जटिल हैं, दुरूह हैं; लेकिन, यदि ठीक तरह समझ लिये जायें तो सरल भी बहुत हैं। यहाँ हम उन सभी वातों की चर्चा करेंगे, जो हमको सव प्रकार से आरोग्य प्रदान करने में समर्थ हैं। स्वास्थ्य लाभ चाहनेवालों को इन वातों पर गम्भीरतापूर्वक मनन करना चाहिए तथा इसके अनुसार अपने जीवन को भी ढालना चाहिए।

संसार में अच्छी वातों की कमी नहीं है, कमी है उनको व्यवहार में लाने की। 'मन मोदक नहिं भूख वुताहीं।' मन के लड्डू खाने से काम नहीं चलता, शेख चिल्ली की वातें दूरतक काम नहीं देतीं, हवाई महल टिक नहीं सकते। आप दृढ़प्रतिज्ञ होकर इन नियमों की अमूल्य वातों को आज से ही जीवन में काम में लावें। अपने जीवन के क्रम को बदलें और कथनी छोड़ 'करनी' की ओर आगे वढ़ें।

स्वास्थ्य या नैरोग्य कहीं दूर नहीं है, वह आपके द्वार खटखटा रहा है। आप जरा उठकर द्वार खोल दीजिए, वह आपकी दीर्घकाल से प्रतीक्षा कर रहा है। यत्न किये विना कुछ काम संसार में होता नहीं। 'नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्तिः मुखे मृगाः।' सोये हुए सिंह के मुख में हरिण खुद ही प्रवेश नहीं करते हैं। यदि गरुड़ भी नहीं चले तो एक कदम भी आगे नहीं वढ़ सकता और कर्म निरत पिपीलिका भी उससे अच्छी, जो निरन्तर कर्म करती हुई अपने लिये एक शानदार नगर का निर्माण कर लेती है।

अतः आप दृढ़प्रतिज्ञ होकर इन नियमों को अभी, इसी क्षण अपने जीवन में उतारने का शुभ संकल्प करे, आप देखेंगे कि आप के जीवन का सूखा वगीचा फिर लहलहा उठा है। जीवन, यौवन व उमंग की तरंगें लहरा उठी हैं।

(१) दीर्घजीवन चाहनेवालों को प्रातः सूर्योदय से १॥ घण्टा पूर्व (ब्राह्म मुहूर्त्त) में उठ जाना चाहिए।

(२) कब्ज न हो, इसके लिये शौच जाने के पूर्व एक या दो गिलास ठण्डा जल पी लेना चाहिए।

(३) सब प्रकार के रोगों से बचने के लिये प्रातः खुली हवा में घूमना आवश्यक है।

(४) दाँतों की रक्षा के लिए प्रति दिन नीम, बबूल आदि की दातौन अवश्य करें।

(५) चर्मरोगों से बचने के लिये प्रतिदिन या सप्ताह में दो बार तैल मालिश अवश्य करें। मालिश करते समय कान में तैल की एक-दो बूँद डालने से कान के रोग नहीं होते हैं।

(६) प्रतिदिन ठण्डा जल से स्नान करने से शरीर में ओज और बल की वृद्धि होती है। भूख खुलकर लगती है और शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है।

(७) अपने-अपने धर्मानुसार ईश्वर का भजन-पूजन करने से आत्म-शक्ति बढ़ती है और मन प्रसन्न रहता है।

(८) भूख लगने पर सात्विक, हल्का, ताजा और पौष्टिक तथा स्निग्ध भोजन प्रसन्न मन से और धीरे-धीरे करें।

(९) भोजन उतना ही कीजिये, जिससे पेट भारी न हो और खाया हुआ अन्न सुख से पच जाय।

(१०) भोजन करने के बाद कम-से-कम आधा घंटा बायीं करवट लेटकर अवश्य विश्राम करें। तुरन्त काम में न लग जायें।

(११) भोजन से पूर्व नमक मिलाकर दो-चार टुकड़ा अदरख का लेने से भोजन में रुचि होती है और मन्दाग्नि आदि विकार नहीं होता है।

(१२) भोजन नियमित समय पर करने की आदत डालने से पेट सम्बन्धी कोई रोग नहीं होते हैं।

(१३) भोजन के मध्य में थोड़ी मात्रा में जल पीने से अन्न का पाचन सुविधा-पूर्वक हो जाता है।

(१४) भोजनोपरान्त हाथ-मुँह धोकर गीले हाथों को मुँह और आँख पर मलने से मुँह की कांति और नेत्र की ज्योति बढ़ती है।

(१५) पानी अधिक और कम पीना दोनों हानिकर हैं। अतः दिन भर में ३-४ सेर से अधिक या कम पानी नहीं पीना चाहिए।

(१६) बर्फ और सोडे का पानी अत्यावश्यक होने पर पीवें।

(१७) बासी, गन्दी और बाजारू मिठाइयाँ, चाट, आइस्क्रीम आदि पेट को खराब करते हैं, अतः इनसे यथासम्भव बचने का ही प्रयत्न करें।

(१८) चाय, बीड़ी, सिगरेट, पान-सुपारी आदि के अत्यधिक सेवन से वचें। बच्चों को तो इनसे सर्वथा दूर ही रखना चाहिए।

(१९) शरीर के स्वास्थ्य को खराव करने में भांग, अफीम, शराव आदि नशीली चीजों का खास हाथ है। अतः इनसे सर्वदा दूर ही रहना चाहिए।

(२०) मौसमी बीमारियों से वचने के लिए ऋतुओं के अनुसार अपने खान-पान में परिवर्तन करते रहें।

(२१) स्वास्थ्य को सबल और सुदृढ़ वनाने के लिए जाड़े का मौसम अच्छा है, क्योंकि इस मौसम में जठराग्नि तेज रहती है। अतः घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करने से तन्दुरुस्ती अच्छी वन जाती है।

(२२) गर्मियों में जठराग्नि मन्द होने के कारण अपच, हैजा, अजीर्ण आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इनसे वचने के लिए नीबू, इमली, कच्ची केरी (आम), पोदीना आदि पत्तियों का उपयोग भोजन के साथ करें।

(२३) वरसात में उवाला हुआ जल पीने तथा हल्का भोजन करने से वरसात में अन्य कोई रोग होने की संभावना नहीं रहती है।

(२४) आश्विन और चैत्र मास में जुलाव लेकर पेट साफ कर लेने से सामयिक बीमारी होने का भय नहीं रहता है।

(२५) स्वप्न-दोष से बचने के लिये, सोने के पूर्व शीतल जल से हाथ-पाँव धोकर थोड़ी देर भगवान् का भजन कर लेने के बाद सोना चाहिए।

(२६) महीने में दो अथवा चार दिन उपवास करने से उदर सम्वन्धी रोग नहीं होता है।

(२७) पाखाने नियत समय पर जाने की कोशिश करें। यदि कब्जियत की शिकायत हो, तो पाखाना जाने से एक घंटा पूर्व एक गिलास ठण्डा जल पी लेना चाहिए।

(२८) सोने-बिछाने के कपड़ों को २-४ दिन के अन्तर से धूप में अवश्य सूखा लें। इससे कपड़े की धूल, गर्द या खटमल आदि सब झड़ जाते हैं।

(२९) शरीर में ताजापन लाने के लिए प्रातः काल हवा और धूप का सेवन अवश्य करें। इससे शरीर फुर्तीला वना रहता है।

(३०) चिरस्थायी स्वास्थ्य के लिये सात्विक भोजन, अच्छी नींद और ब्रह्मचर्य का पालन करना प्रत्येक मानवमात्र के लिये अनिवार्य कर्त्तव्य है।

(३१) दिन में २-४ वार मित्रों के साथ दिल खोलकर अवश्य हँसें, इससे दिन भर की थकावट दूर होती है तथा मन प्रसन्न रहता है।

—०—

८. उषः पान, प्रभात-भ्रमण व भगवन्नाम-स्मरण

(अ) ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठना :

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः

—स्वस्थ पुरुष अपनी आयु की रक्षार्थ ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे।

प्रभात-वेला अमृत-वेला है। जो सुबह जल्दी उठकर डूबते हुए तारों को देखता है, क्षितिज के पास पूर्व दिशा में अरुणाई को फैलने के सौन्दर्य का अनुभव करता है, उसके सौभाग्य का क्या कहना। सारा वातावरण शान्त, मंद समीर, लताओं की गोद में कलियों का लटकना, फैला हुआ नीलाकाश—विश्व के महान् चित्रकार की तूलिका इस समय अपना सारा कौशल बिखेरती है।

पर, खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज हमारी आदत सुबह उठने की रही नहीं। रात के बारह बजे तक जागना, सिनेमा हालों के घुटे-घुटे वातावरण में साँस लेना, होटलों, नाटक घरों व नाचघरों में पड़े रहना—बड़े लोगों की शान में शामिल हो गये हैं।

जिस समय प्रकृति सुन्दरी अपने सर्वोत्तम शोभा के साथ वनों में थिरकती है, उस समय हमारे घरों में तन्द्रा का दौर चलता रहता है और देर से उठते ही चाय और सिगरेट की कुटेव और पाल रखी है—यह मार्ग सब प्रकार से सर्वनाश का मार्ग है।

सुबह उठने से शरीर में स्फूर्ति, चिन्तन में ताजगी, विचारों में पवित्रता, स्मरण-शक्ति में प्रखरता, मन में उत्साह और सारे अंग-प्रत्यंगों में उत्फुल्लता का संचार होता है।

इस समय सभी पशु-पक्षी जागकर किल्लोल करने, नाचने, कूदने, फुदकने और गाने लगते हैं। हवा निर्धूल होकर धीमे-धीमे बहने लगती है। वैदिक ऋषियों ने इसी चिर युवती उषा सुन्दरी के अनिन्द्य अनन्त रूप का वर्णन कर अपने को आकण्ठ तृप्त किया है। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठने की आदत सब को डालनी चाहिए।

हमारे देश में हमेशा ही जल्दी उठने को पुरानी परिपाटी रही है। माता यशोदा ऐसे सुन्दर समय में प्रभाती गाकर भगवान् कृष्ण को जगाया करती हैं—

संगीत के मधुर स्वरों में जगाने का रिवाज था। "जागिये व्रजराज कुंवर कनक कुसुम फूले।' पुराने समय में शर्वरी के बीत जाने पर प्रभात-वेला में मधुर गीतों के साथ सारा वातावरण स्वरों में गूँज उठता और चारों ओर एक ही आवाज सुनाई देती थी—'जागो, जागो, प्रभात हो गया है, सुनहला विहान हो गया।'

महाकवि 'प्रसादजी' ने भी इसी भावना को सुमधुर गीत में मुखरित किया है—

बीती विभावरी जाग री।
अम्वर पनघट में डुवो रही तारक घट उषा नागरी।

रात बीत गई है। आकाश के पनघट में उषा सुन्दरी पनिहारिन वनकर तारेरूपी घड़ों को डुवो रही है। पक्षी चहक उठे हैं, मलय वायु के झकोरे चलने लगे हैं। हे सखी, तू अपनी उनींदी आँखें लिये कवतक सोती रहेगी।

(आ) उषः पान करना :

सुवह उठते ही मुँह को स्वच्छ कर उषः पान कीजिए ; उषाकाल में ताँबे के वर्तन में या मिट्टी के वर्तन में जो सुस्वादु स्वच्छ जल है, उसको आप अवश्य पान करें। उषःकाल में जल पीने का वहुत महत्व है। शौच-क्रिया में भी इससे लाभ पहुँचता है। गला साफ हो जाता है। शरीर की दाह मिट जाती है। शरीर में ताजगी और स्फूर्ति का प्रवेश होता है। शुष्कता व जलन मिटती है। आँखों में, दिमाग में तरावट आ जाती है। पेट की शुद्धि में सहायता मिलती है। उषाकाल में नासिका से पानी पीने का अभ्यास करना चाहिए। जो लोग नासिका से पानी पीते हैं, वे जुकाम, सर-दर्द आदि वीमारियों से अपने को मुक्त कर लेते हैं। उषःपान की आदत स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम औषध है।

(इ) प्रभात-भ्रमण :

खेतों की पगडंडी, नदी का किनारा, वृक्षों से छायी हुई सड़क, वाग-वगीचा—सुवह घूमने के उपयुक्त स्थान हैं। यदि हरियाली भी हो, तो खुले मैदान में घूमना चाहिए। यों तो प्रभात-भ्रमण किसी भी प्रकार से किया जाय, सव प्रकार से स्वस्थ्यवर्धक है। लेकिन, प्रभात-भ्रमण का पूर्ण लाभ तभी होता है, जव कि इसे व्यायाम के रूप में काम में लाया जाय।

यों कुछ लोग घूमने जाते हैं, पर, उन्हें घूमना नहीं आता। वहुत लोग धीरे-धीरे चहलकदमी करते घूमते हैं। शरीर भी ढीला-ढाला झूमते, ढीला खाते

घूमते हैं। घूमते हुए दुनिया भर की फालतू बातें करते हैं। किन्तु स्तुति में उलझे हुए लोगों की कुछ सत्य, अर्ध-सत्य फालतू गप्प लड़ाते रहते हैं। वाणी के असंयम का खुलकर प्रदर्शन करते हैं। या फिर घर, दफ्तर की या दुनिया भर की वाहियात चिन्ताओं में उलझ कर अपने मन को चिन्ताओं का अजायब घर बना लेते हैं। इस प्रकार से बहुत कम लाभ होता है। साथ ही अपने शरीर पर कपड़ों की पर्त-पर-पर्त चढ़ा लेते हैं। सिर से पैर तक लिपटे हुए, बस मुँह, नाक व आँखें खुली हुईं बाकी सब लिपटे हुए—ऐसी स्थिति में हवा भी कपड़ों की इस किलेबन्दी से टकरा-टकरा कर लौट जाती है। अतः घूमना ढंग से चाहिए, जिससे सारे लाभ हमें मिल सकें।

हल्के कपड़े पहनकर आप घूंमने निकलिये। तेज झपट कर चलें। सीना आगे निकला हुआ हो, पैरों में तेजी हो, दोनों भुजाएँ तेज झूलती हुई हों, अंग-अंग में स्फूर्ति व तेजी हो, इस प्रकार के घूमने का सारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों पर शुभ प्रभाव पड़ता है। मुख पर उदासी न हो, मुस्कान हो, मन में कल्पना कीजिये कि सा रा का सारा उत्साह मेरे मन में भर रहा है, मेरे अंग-अंग में शक्ति का संचार हो रहा है। आँखें सामने खुले आसमान पर रखिये और सोचिये मैं आनन्द का सागर हूँ। चिन्ताएँ मिथ्याहैं, भ्रम हैं। किसी प्रकार की घर-बाहर की चिन्ताओं को पास न फटकने दें। दिमाग को आशा, प्रेम, उल्लास, मंगल की भावनाओं से भरिये। किसी का अमंगल न सोचें, अपनी भावी चिन्ताओं की भयंकरता से न डरें। इस प्रकार आप एक घण्टा घूमने का अभ्यास डालिये।

आप अब दिन भर अपना दैनिक कार्य ठीक तरह से कर सकेंगे, दिन भर काम में आपका मन लगा रहेगा। कोई भी उलझन आयेगी, तो आप उसको फौरन सुलझा सकेंगे। आपकी निर्णय शक्ति में दृढ़ता आ गई है, कार्य की रफ्तार तेज़ हो गई है, काम में मन लगता है, थकान नहीं मालूम होगी। आपने जो सुबह प्राणप्रद वायु का खजाना पा लिया है, उसकी सम्पत्ति से अब रात-दिन खत्म होने वाले नहीं। दूसरे दिन सुबह फिर प्रकृति आपके लिए सुख व आनन्द का अनन्त खजाना लिये आपके पास खड़ी है। आपको इस प्रकार प्रभात-भ्रमण के रूप में प्रकृति ने स्वास्थ्य की कुंजी सौंप दी है। आप अब निहाल हैं, मालोमाल हैं।

(ई) प्रभु-नाम-स्मरण :

घूम कर आने के बाद थोड़ा-सा समय भगवान् को स्मरण करने में लगाइये। ईश्वर को याद न करना—महान् अपराध है, कृतघ्नता है, नमक हरामीपना है।

ईश्वर ने हमें क्या नहीं दिया, उस करुणा वरुणालय के अनन्त उपकारों से हम कभी भी मुक्त नहीं हो सकते।

आपका भगवान् के जिस रूप पर विश्वास हो, अपने इष्ट देवता को याद कीजिए, उसकी स्तुति कीजिये। किसी धार्मिक ग्रन्थ रामायण, गीता आदि का परायण कीजिए। आप देखेंगे कि आपको भगवान् की कृपा का अनन्त वरदान मिल गया है। अब आप को किसी का भय नहीं, आपका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। भगवान् का नाम हमारे जीवन की सबसे बड़ी निधि है। उसको पाकर हम तीनों लोकों के सम्राट् हैं। भगवान् के प्रति विश्वास, श्रद्धा व निष्ठा रखनेवाले जीवन में हमेशा विजयी होते हैं।

भगवान् को स्मरण करने का अर्थ यह नहीं है कि आप फिर दिन भर अनर्थ करें। भगवान् का सच्चा भक्त किसी के दिल को दुखा नहीं सकता। वह आत्मोपाय मात्र से, सबके साथ करुणा व प्रेम का व्यवहार करेगा। उसके लिए अब कोई पराया नहीं। सभी भगवान् के बन्दे हैं, सन्त कबीर की भावना उसमें उभड़ेगी—

'का पर किरपा कीजिए, का पर निरदय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी मुजर दोय॥'

आजकल नास्तिकता बढ़ रही है, इससे चारों ओर अशान्ति नजर आती है। प्रभु पर विश्वास नहीं, इससे चिन्ताओं के थपेड़े खाने पड़ते हैं। रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि, अशान्ति को नष्ट करने का उपाय है—प्रभु का सच्चे हृदय से, पवित्र मानस से स्मरण करना। फिर आनन्द ही आनन्द है। ईश्वर पर विश्वास करनेवाले का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता—

'जाको राखै साइयां, मार न सकिहैं कोय।
बाल न बांका कर सकै, जो जग बैरी होय॥'

रसखान ने भी कहा है—माखन-चखन वाला यदि मेरा रक्षक है, तो बेचारा यमराज मेरा क्या करेगा।

—०—

९. सन्तुलित भोजन

'भूखे भजन न होइ गोपाला' केवल भजन ही नहीं, संसार का कोई भी कार्य भूखा नहीं कर सकता। आहार हमारे जीवन का आधार है। हमारे प्राण अन्न में बसते हैं। दुनिया की सारी दौड़-धूप इसी आहार के लिये है। लेकिन, आश्चर्य व खेद का विषय है कि हमारी भोजन के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है और हम अज्ञानवश मनमाना भोजन कर अपने को रुग्ण, निर्बल और अल्पायु बना देते हैं।

हमें भोजन की प्रतिदिन आवश्यकता है। हमारा शरीर निरन्तर काम करता रहता है, उसकी शक्ति हमेशा खर्च होती है। भोजन का काम है—शरीर की कमी को पूरा करना, उसकी व्यय होनेवाली शक्ति को पुनः देना, शरीर के टूट-फूट की मरम्मत करना, शारीरिक व मानसिक कार्य करने में सक्षम बनाना। भोजन हमारे शरीर की शक्ति है। आचार्य चरक ने अन्न के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर लिखा है—

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्॥
तुष्टिः पुष्टिः बल मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्॥

—प्राणियों का प्राण अन्न है। सारा संसार अन्न के पीछे दौड़ता है। अन्न ही सुन्दर रंग है, यही प्रसन्नता है, अन्न ही सुरीला स्वर है, जीवन है, प्रतिभा है, सुख है। अन्न पर ही सन्तुष्टि, पुष्टि, बल, मेधा सभी कुछ प्रतिष्ठित है।

जीवन में भोजन का बहुत अधिक महत्व है, वही स्वास्थ्य है, वही सौन्दर्य है। लेकिन, हमारा भोजन का ढंग दिन-पर-दिन विगड़ रहा है। इसी का कुफल हमारे सामने है। दूध, जो शाकाहारियों का सर्वश्रेष्ठ भोजन है, उसका स्थान चाय, काफी ने ले लिया है। छाछ या तक्र अब कहाँ, उसके स्थान पर तरह-तरह के बर्फीले शीतल पेय पदार्थ आ गये हैं।

भोजन की शक्ति को कम कर उसे देखने में सुन्दर बनाने या स्वाद में जायकेदार बनाने की ओर हम पागलपन के साथ दौड़ रहे हैं। इसी का नतीजा है कि रात-दिन

बीमारियों का जाल फैल रहा है, दवाइयों का चक्कर चल रहा है। चिकित्सा-विज्ञान का काम इलाज करना नहीं; यह तो उसका एक प्रतिशत काम है, उसका मुख्य काम है—सारे विश्व को रोग-मुक्त रखकर जीवन को स्वस्थ, सबल व दीर्घ-जीवी बनाना।

भोजन सम्बन्धी अज्ञान दो रूपों में फैल रहा है। कुछ लोग घी या पौष्टिक पदार्थ, बढ़िया मिष्ठान्न, मँहगे मेवे में स्वास्थ्य समझते हैं। वे लोग अपने को मोटा-ताजा बनाने में लगे हैं। केवल बढ़िया भोजन हमें स्वास्थ्य प्रदान नहीं कर सकता। कुछ लोग इतना सादा भोजन करते हैं—जैसे बीमार हों। अत्यन्त सादा भोजन हमें नीरोग रख सकता है; पर, हमें शक्ति नहीं दे सकता। भोजन के सम्बन्ध में ये दोनों दृष्टिकोण ठीक नहीं। भोजन के सम्बन्ध में बीच का मार्ग उचित है।

निरामिष भोजियों या शाकाहारवालों के लिये अपने भोजन को सन्तुलित करने की निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए। नीचे लिखी बातों को यदि हम अमल में लावें, तो हमारा भोजन सब प्रकार के विटामिनों और आवश्यक तत्वों से युक्त होकर हमें पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करेगा।

भोजन के पदार्थों को हम पाँच हिस्सों में बाँट सकते हैं—

(१) दूध और उससे बननेवाले अन्य पदार्थ,
(२) अन्न—गेहूँ, चावल, बाजरी, चना आदि,
(३) दाल,
(४) हरी साग-सब्जी,
(५) फल।

प्राचीन समय से उक्त पाँच प्रकार के भोज्य पदार्थ भारतीय दैनिक भोजन के आवश्यक अंग थे। यदि हम इन्हीं को विवेकपूर्वक उपयोग में लावें, तो हमारा भोजन पूर्ण व सन्तुलित हो जायगा। साथ ही हमें अपने राष्ट्र के जीवन में बढ़ने-वाली कृत्रिम भोजन प्रणाली व उत्तेजक व हानिप्रद पदार्थों के सेवन-रुचि को भी खत्म करने के लिये प्रभावशाली कदम उठाने चाहिए।

(१) दूध :

हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थ दूध की महिमा से भरे हैं। हमारे देश में गोमाता की पूजा के मूल में इसी दूध का महत्व है। दूध पूर्णाहार है। यह मधुर, शीत, पत्तनाशक और पोषण करनेवाला है। यह वीर्यवर्धक है। दूध सब के लिये

समान हितकर है। बच्चा, बूढ़ा, जवान, स्त्री सभी का यह पूर्ण आहार है। दूध जवानी को स्थिर रखता है, सब रोगों में पथ्य है, यह बुद्धि को बढ़ानेवाला है।

दूध धरती का अमृत है। विज्ञान की कसौटी पर भी दूध का महत्व किसी प्रकार भी कम नहीं हुआ, लौह, विटामिन सी के अतिरिक्त अन्य सभी पोषकतत्व दूध में हैं।

एक दिन था, जब भारत में दूध और दही की नदियाँ बहती थीं। हमारे भोजन में दूध का प्रचुर प्रयोग था। अतिथियों का भी हमेशा दूध से सत्कार किया जाता था। हमारे सभी धार्मिक कार्य दूध से सम्पन्न होते थे। माखन-रोटी का रिवाज था और छाछ बेमोल सब को सुलभ था। लेकिन, आज हमारी उपेक्षा से दूध दुर्लभ बनता जा रहा है।

हमारी गो-पालन की ओर अभिरुचि नहीं रही। गाँवों में गो-पालन से लोग ऊबते जा रहे हैं। गाय का दूध हमारी माता के दूध से मिलता-जुलता है। जब तक गो-माता को स्वस्थ व नीरोग बनाने की ओर हम ध्यान नहीं देंगे, जबतक सुधार नहीं करेंगे, गो-पालन शुरू नहीं करेंगे—तबतक हमको दूध पूर्ण रूप से विश्वस्त व लाभदायक नहीं मिल सकता।

दूध, आज जो बाजार में हमें प्राप्त होता है, वह दूध के रूप में विष है। अस्वस्थ व दुर्बल गायों का दूध बीमारियों को बढ़ाता है। दूध तुरन्त का दुहा हुआ, स्वस्थ पशु का ही लाभदायक है। दुहने के बाद यदि दूध पड़ा रह गया, तो वह विकृत हो जाता है। उसके बाद दूध को हलका-सा उबाल देकर पीना चाहिए। ज्यादा गर्म कर गाढ़ा बनाने से दूध अपने पोषकतत्वों का कुछ भाग नाश कर देता है और वह दुष्पच्य हो जाता है।

आज हमारे घरों में दूध के प्रति अरुचि बढ़ रही है। बहुत से बच्चे दूध पीना पसन्द नहीं करते। यह भ्रान्त धारणा बल पकड़ती जा रही है कि दूध भारी व दुष्पच्य होता है। दूध में अब स्वाद ही लोगों को नहीं मिलता। दूध का स्थान चाय ने ले लिया है। यह देश का दुर्भाग्य है। चाय के आने का मतलब है—अपने स्वास्थ्य की बलि, जीवन में क्षणिक उत्तेजना, क्षणिक नशा आ रहा है। संयम की शान्ति को हम अपने हाथों नष्ट करने पर उतारू हैं।

शाकाहारियों के लिये दूध से बढ़कर कोई पूर्णाहार नहीं। दूध गाय का ही उपयोगी है। यदि गाय का दूध न मिले, तो बकरी का दूध काम में लिया जा सकता है। बकरी का दूध गाय की अपेक्षा हल्का व सुलभ होता है, अतः जिनकी जठराग्नि मन्द है, उनके लिए बकरी का दूध बहुत हितकर है। भैंस का दूध दुष्पच्य, गरिष्ठ व बुद्धिनाशक है—अतः भैंस के दूध का उपयोग नहीं करना चाहिए।

विश्ववरेण्य महात्मा गांधीजी ने दूध की महिमा का मुक्त हृदय से वर्णन किया है, उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है—"मैं शाकाहार का पक्षपाती हूँ। मगर अनुभव से मुझे स्वीकार करना पड़ा है कि दूध और दूध से वनने-वाले पदार्थ जैसे मक्खन, दही आदि के विना मनुष्य का शरीर पूरी तरह टिक नहीं सकता।"

दही :

दही दीर्घजीवन देनेवाला है। इससे पेट की बीमारियाँ नष्ट होती हैं। यह अग्निदीपक है। यह अरुचि और कमजोरी को दूर भगाता है।

तान्त्रिक दृष्टि से दूध व दही समान रूप से गुणकारी हैं। दही को भी हमें अपने भोजन का अनिवार्य अंग वना लेना चाहिए।

आजकल दूध व दही का मिलना कठिन हो रहा है। दही को मथकर मक्खन निकाला जाता है। मक्खन और घी भी हमें शक्ति देने में महत्वपूर्ण हैं। भोजन में स्निग्धता की भी आवश्यकता है।

छाछ या तक्र, मथे हुए दही से मक्खन निकालने के बाद, वच रहते हैं। दूध और दही के समान छाछ का भीं हमें नीरोग रखने में वहुत महत्व है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में तक्र की प्रशंसा भरी पड़ी है। यहाँ तक कहा गया है कि तक्र तो शुक्र (इन्द्र) को भी दुर्लभ है। इसे अमृत भी वताया गया है।

'योग रत्नाकर' में छाछ की प्रशंसा वहुत ही कलापूर्ण ढंग से की गई है—

कैलाशे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेत्।
वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेद् अद्यापि किं केशवः॥
इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्वोवरत्वं गणः।
कुष्टित्वं च कुवेर को दहनतामग्निश्च किं विन्दति॥

—अर्थात् शिवजी को यदि कैलाश में तक्र मिल जाता, तो क्या शिवजी नीलकंठ रहते? (तक्र विषहर है।) यदि वैकुंठ में छाछ होती, तो विष्णु का रंग काला रह जाता? (छाछ रंग को सुन्दर वनाती है।) इन्द्र के व्रण नष्ट हो जाते, चन्द्रमा की टी० वी० मिट जाती, गणेश की लम्वी तोंद न रहती, कुवेर का कुष्ठ नहीं रहत और अग्नि को जलना न पड़ता—अर्थात् छाछ घावों को भरता है क्षय को मिटाता है, पेट को ठीक करता है, कुष्ट को दूर करता है और जलन शान्त करती है।

जीवेम :

इससे स्पष्ट है कि छाछ, मट्ठा या तक्र का हमें स्वस्थ रखने में पूर्ण योग है। आज भाग्यवानों व श्रीमानों के घर छाछ से खाली हैं, वहाँ चाय का दरिया बहता है; गोमाता के दर्शन कहाँ, वहाँ कुत्ते पाले जाते हैं। किसी व्यक्ति ने ठीक कहा था कि जिन घरों में दधि मंथन को स्वर न हो, बच्चों की किलकारियाँ न हों—वह घर मनहीं, जंगल है, शायद श्मसान है।

(२) अन्न :

अन्न भारतवर्ष का प्रधान आहार है। गेहूँ, और चावल भारत का प्रधान खाद्य हैं। गौण रूप में बाजरा, मोठ, मकई आदि काम में लाये जाते हैं। गेहूँ पुष्टिकारक, शुक्र बढ़ानेवाला, स्निग्ध होता है। टूटे हुए स्थानों को जोड़ता है, वायु और पित्त को नष्ट करता है।

चावल शीतल, मधुर, शीघ्र पचनेवाला होता है। बाजरा यों तो दुष्य व रूक्ष हैं; पर, जो इसे खाने में अभ्यस्त हैं, उनके लिये यह पुष्टिकारक ह। बाजरे की रूक्षता दही, घी, रबड़ी आदि से दूर की जा सकती है।

गेहूँ और चावल हमारे प्रधान भोज्य हैं। लेकिन, आज रिवाज यह चल पड़ा है कि गेहूँ के आटे को बहुत महीन कागज की तरह पीसते हैं, छानकर उसका चोकर बाहर निकाल देते हैं। गेहूँ में सभी विटामिन बी छिलके के पास तथा मुँह के कण में होते हैं। यदि आटे में सेचोकर निकाल दिया जाय, तो उसका अधिकांश विटामिन बी नष्ट हो जाता है और अन्य तत्व भी कम हो जाते हैं। मैदा तो और भी हानि-कारक है। आटा कम चालें और चोकर सहित आटा को काम में लावें।

चावल हाथ का कूटा हुआ लाभप्रद है। मशीनों से साफ किया हुआ, ऊपर से चमकीला बनाया हुआ, चावल विटामिन बी का ह्रास कर देता है। चावलों को बराबर धोने और मांड बाहर निकालने में उसका सारतत्व नष्ट होता है। अतः मांड सारे चावलों—भात का उपयोग होना चाहिए।

चावल खानेवालों को आहार सन्तुलन की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। जौ और चना भी स्वास्थ्य के लिये विशेष उपयोगी हैं।

(३) दाल ;

दाल, रोटी या चपाती के साथ खाया जानेवाला आवश्यक आहार है। दाल का हमारे देश में बहुत प्रचलन है, इतना संसार में कहीं नहीं। दालों में प्रोटीन काफी मात्रा में है, ये निरामिष भोजन की जान है। खान-पान के सन्तुलन को बनाये रखने

में दाल सबसे सस्ता साधन है। अधिकांश व्यक्ति केवल एक प्रकार की दाल खाते हैं, यह ठीक नहीं। दाँतों से पूर्ण लाभ उठाने के लिए अनेक प्रकार की दालें मिलाकर खानी चाहिए या अलग-अलग दिन भिन्न-भिन्न दाल खायें। दालों का छिलका न उतारें। दालों को भिगोकर छिलकाहीन करके वे निःसत्व हो जाती हैं। उरद, मूँग, अरहर, मसूर, चना, मोठ आदि की दालें भारत के विभिन्न राज्यों में खाद्य के काम में लाई जाती हैं।

शाक-सब्जी :

कहने के लिये हम शाकाहारी हैं। पर, हमारे भोजन में शाक-सब्जी का प्रधान स्थान नहीं। अन्न व दालों के बाद गौण रूप में सब्जी का स्थान है। फिर हरी सब्जी को हम इतना अधिक छौंकते और मिर्च-मसालों से लज्जतदार बनाते हैं, तो उनकी शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। यूरोपियन ढंग के भोजन में सूप, एक प्लेट सलाद और उबली हुई शाक-सब्जी उनके दैनिक नियमित भोजन का अंग है। हमें भी अपने भोजन में शाक-सब्जी को विशिष्ट स्थान देना चाहिए, इससे हमारा भोजन सन्तुलित होगा।

हरी पत्ती के साग चौलाई, पालक, मेथी, बथुआ, पुदीना, धनिया, मूली के पत्ते और सरसों हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। पत्तों के साग विटामिन ए० सी० व खनिजों के भाण्डार हैं।

देखा जाता है कि बहुत से लोग साग-सब्जी को कम पसन्द करते हैं। इसे साधारण आहार मानते हैं। वे यह नहीं जानते कि सात्विक दृष्टि से हरी पत्ती के साग फलों से भी उत्तम हैं।

खरबूजा, ककड़ी, तुरई, करेला, खीरा, मटर, टमाटर, गाजर, चना, हरी मिर्च, आलू, भिण्डी, घीया, करेला—सभी साग हमारे लिये लाभदायक हैं। इनका प्रयोग मात्रा में ज्यादा करना चाहिए तथा पत्तीवाला सागों के प्रति हमें अपनी रुचि बढ़ानी चाहिए।

फल :

पके हुए फल हमारे प्राकृतिक आहार हैं। पूर्ण आहार की दृष्टि से फल हमारे बहुत काम के हैं। आम और केला तो भारत में प्रसिद्ध तथा सबको सुलभता से मिलनेवाले फल हैं। सेव, अंगूर, बादाम मँहगे हैं—साधारण लोग इनका उपयोग नहीं कर सकते। लेकिन, फल तो अनेक प्रकार के हैं, जो सस्ते भी हैं और साधारण लोगों को भी मिल सकते हैं। इस भ्रम को दूर कर देना चाहिए कि जो फल

मँहगे होते हैं, वे शरीर के लिए भी बहुत लाभप्रद हैं और सस्ते फल कम लाभप्रद। दैनिक आहार में सस्ते व सुलभ फलों की मात्रा आप बढ़ा दीजिए आपको इनसे शक्ति और प्रोटीन मिलेंगे तथा खनिज और विटामिन भी।

शहद, गुड़, आँवला, नमक आदि :

भोजन में शहद का यदा-कदा उपयोग होना चाहिए। सफेद चीनी का प्रयोग मत कीजिए, इसे 'सफेद जहर' तक कहा गया है। चीनी का ज्यादा उपयोग हमारे लिए हानिप्रद है। गुड़ व गन्ने का रस उपयोग में लावें। नमक की उचित मात्रा शरीर के लिए हितकर है। त्रिफला का प्रयोग भी रक्त को शुद्ध करनेवाला और कब्जियत को मिटानेवाला है। नारियल की (गरी) भी यदा-कदा काम में लेनी चाहिए। ये सब सहायक पदार्थ हैं, जो हमारे लिए काम के हैं। बहुत से लोग मसालों के खिलाफ हैं, लेकिन जीरा, हल्दी, धनियां, अदरख, गोलमिर्च, सेंधा नमक, नीबू, इलायची इत्यादि हमारे लिये उचित मात्रा में लेने से उपयोगी है।

भोजन सम्बन्धी अन्य उपयोगी बातें :

भोजन चाहे अमृत ही क्यों न हो, उसका विषय प्रयोग विष का काम करता है। भोजन अपनी शक्ति, उम्र, श्रम और पाचन-शक्ति के अनुसार कीजिए। ठूँसकर खाने से लाभ नहीं हो सकता। कम अहार भी शरीर को क्षीण और दुर्बल बनाता है।

१. भोजन चबा-चबाकर करें।
२. भोजन का कमरा स्वच्छ हो।
३. भोजन करते समय उतावलापन न करें।
४. मन से प्रसन्न रहें।
५. भोजन के समय चिन्ता की बात करने या दिमाग में लाने से पाचन-क्रिया बिगड़ती है।
६. भोजन की निन्दा न करें।
७. यदि कोई भोजन आपकी रुचि का न बने, तो आप झल्लावें नहीं।
८. भोजन के समय क्रोध करना ठीक नहीं।
९. भोजन रुचिपूर्वक करें।
१०. भोजन के बाद अच्छी प्रकार से कुल्ला करें।
११. ताम्बूल सेवन भी किया जा सकता है।
१२. भोजन के बाद पन्द्रह मिनिट तक अवश्य विश्राम करें।

भारतवर्ष में अन्न को ब्रह्म माना गया है।

मनुस्मृतिकार ने लिखा है कि—'पूजयेदशनम्।' भोजन की पूजा करनी चाहिए। भोजन चाहे कितना ही सुस्वादु क्यों न हो, उसका अनादर करने या क्रोध, घृणा आदि विकारों से सेवन करने से वह हानि पहुँचाता है।

भूख की छलना, और—

भोजन कब करना चाहि, इसका उत्तर एक ही है—जब खूब भूख लगे। लेकिन, भूख का पहचानना सरल नहीं। साधारणतः जो भोजन का समय होता है, कम समय हमें आदतन भोजन की इच्छा होती है, हमको लगता है कि हमें भूख लग गई है। पर, अनेक बार भूख की पहचान में गलती होती है। सही भूख का अनुभव हमको जीवन में कम होता है—कभी पैदल यात्रा का मौका मिले, जरा दस-बीस मील पैदल चलकर देखिए, क्या मधुर और कड़ाके की भूख लगती है। उस समय साधारण भोजन में जो बेहद स्वाद होता है, वह सुधोपम भोजन में भी नहीं। स्वाद तो भूख में है। अच्छी भूख लगने के लिए शारीरिक श्रम करना आवश्यक है। भोजन की मात्रा का भी एक उत्तर नहीं दिया जा सकता। आप दिन भर क्या काम करते हैं, उसी पर यह उत्तर निर्भर है। इन सब बातों का सही निर्णय हम स्वयं कर सकते हैं।

भोजन सात्विक हो। तामसिक व राजसिक भोजन को छोड़ दें। बासी, दुर्गन्धयुक्त भोजन का व्यवहार न करें। हितकर भोजन करें, समय पर करें। भोजन न ज्यादा हो न कम, मिताहारी बनें।

भगवान् बुद्ध ने कहा है—

"एक बार हलका खानेवाला महात्मा दो बार सम्हल कर खानेवाला बुद्धिमान और भाग्यवान्, इससे अधिक खानेवाला महामूर्ख, अभागा और पशु है।"

—०—

१०. ब्रह्मचर्य : संयम : सदाचार

(अ) ब्रह्मचर्य :

भारतीय साहित्य ब्रह्मचर्य की अपार महिमा से भरा है। ब्रह्मचर्य का स्थूल अर्थ है—वीर्य-रक्षा या इन्द्रिय संयम; पर इसका गंभीर अर्थ है—अपने को संयमित रखते हुए ब्रह्म की प्राप्ति में अपने को समर्पित करना। प्रश्न है—'संयम किसलिये, इसका उद्देश्य जब तक महान् नहीं होगा, तब तक ब्रह्मचर्य त्याग की निष्फल महिमा मात्र है। व्यवहार में ब्रह्मचर्य का अर्थ है—नियमित व संयमित भोग के साथ इन्द्रियों का संयम। एक स्त्रीव्रती होकर भी यदि कोई संयमपूर्वक धर्मानुकूल भोग नहीं करता है, तो वह भी ब्रह्मचारी नहीं कहा जा सकता।

आज का वातावरण ब्रह्मचर्य के विपरीत बनता जा रहा है। लोगों की इसके प्रति श्रद्धा भावना नहीं। मन चंचल है, आचरण शिथिल है, संयम टूट रहा है, वातावरण में भोग की उत्तेजना है, घर व बाहर चारों ओर भोग का बहाव है, सिनेमा का विषैला चक्कर है, धर्म की शिक्षा का अभाव और उत्तेजना व अश्लील साहित्य का बोलबाला है।

भारतीय ऋषियों ने ब्रह्मचर्य को जीवन रक्षा की दिव्यौषध बताया है। भोजन चाहे कितना ही स्वास्थ्यवर्धक क्यों न हो, केवल मात्र उससे दीर्घजीवन, नैरोग्य और स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। मकान को मजबूत बनाना हो तो नींव को मजबूत बनाना होगा, इसी प्रकार हमारा जीवन प्रासाद की तरह है, उसकी नींव है, बाल्य काल—इसीको हमारे ऋषियों ने ब्रह्मचर्याश्रम कहा है।

ब्रह्मचर्य से शक्ति व विवेक की वृद्धि होती है। शरीर लावण्य व कान्तिमय बनता है। ब्रह्मचर्य के अभाव में आज विद्यार्थियों का चेहरा फीका और निस्तेज है; उनमें निराशा व घुटन है, उत्साह व स्फूर्ति नहीं, उमंग व कष्ट सहिष्णुता नहीं। सुस्ती, अकर्मण्यता, स्मृति-भ्रंश, दब्बूपन और निराशा—ब्रह्मचर्य के अभाव का नाम है। किसी घड़े में यदि छेद हो, तो उसे चाहे कितना ही पानी से भरें, वह खाली का खाली ही रहेगा।

संसार की किसी भाषा में ब्रह्मचर्य का पर्यायवाची भी शब्द नहीं है। भारत के ऋषियों ने इस शब्द को महिमान्वित कर इसे मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेवाला बतलाया है।

ब्रह्मचर्य पालन की तीन अनिवार्य शर्त्तें हैं—शुद्ध व सात्विक भोजन, सद्-संगति व महान् उद्देश्य। आज इन तीनों का अभाव-सा हो रहा है। भोजन में मिर्च-मसालों की भरमार है। शाक व फलाहार की कमी है। दूध, दही व मक्खन हमारे भोजन से वहिस्कृत हो रहे हैं, और उनका स्थान चाय, काफी व मादक द्रव्य ले रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता की जूठन को हम खाने में अपना गौरव की ओर हैं और मन में समझ रहे हैं कि हम उन्नति के पथ पर दौड़ रहे हैं। विनाश समझते हम बढ़ रहे हैं, पर हम समझते हैं कि यही उन्नति का सच्चा रास्ता है।

सद्संगति की कमी हो रही है। न प्राचीन ग्रन्थों का पठन-श्रवण है, न साधु-सन्तों की संगति का लाभ है और न जीवन का कोई महान् उद्देश्य है। इन सब के अभाव में हमारा चरित्र गिर रहा है और हम भौतिक समृद्धि की चकाचौंध में अपने जीवन की वाजी लगाए हुए हैं। मौत व दुःखों को हम स्वयं निमंत्रण देकर बुला रहे हैं।

आज के युग में ब्रह्मचर्य की या ब्रह्म की चर्चा भी लोगों को अप्रिय है; लेकिन, जो सचाई है उसकी यदि दुहरावेंगे नहीं, तो फिर सुधार का रास्ता सदा के लिए बन्द हो जायगा।

ब्रह्मचर्य का पालन चाहे सरल हो या कठिन, जीवन को स्वस्थ, सबल, दीर्घ-जीवी और महान् बनाने का—यही एक मात्र पथ है। ब्रह्मचर्य का अनादर—आत्महत्या है। ब्रह्मचर्य से हम चौंकें नहीं। ब्रह्मचर्य के अभाव में हमारी योग शक्ति भी नष्ट हो रही है। निस्तेज, निर्वीर्य, संतति न अपना हित करेगी और न राष्ट्र का। परलोक की वात जाने दीजिए, योग को लीजिए, उसके लिए भी संयम व सदाचार की आवश्यकता है। योग की शक्ति भी तप व संयम विना प्राप्त नहीं हो सकती।

हमारे देश में जो नव शिक्षित वर्ग आ रहे हैं, उनकी वृत्ति तो ब्रह्मचर्य से विमुख हो रही है। विमुख ही नहीं हो रही है, प्रत्युत् वे इससे विरोधी भी हैं। ब्रह्मचर्य शब्द आज केवल मखौल बन रहा है, इसका दुष्फल सामने है।

हमारे घरों की व वाहर की जो स्थिति है, वह ब्रह्मचर्य के लिए अनुकूल नहीं। इसमें सुधार आवश्यक है, इसके विना हम संयम और सदाचार की ओर आगे नहीं बढ़ सकते। चारों ओर सिनेमा का जाल है, हल्के व गन्दे गीत बाजारों, गलियों में गूँजते हैं, भद्दे पोस्टर दिवारों पर चिपके हैं—इन सब का बुरा प्रभाव सभी पर पड़ता है। फिर विद्यार्थी, जो कोमल मति है, उस पर तो प्रभाव पड़ेगा ही। अतः प्रत्येक विवेकशील भारतीय का कर्त्तव्य है कि वह जरा रुक कर, वहाव की तेज धारा से हटकर, सोचे कि यह मार्ग क्या उसके लिये सही है। यदि

वह अनुभव करता है कि यह मार्ग नाश व ध्वंस का है, तो फिर निष्क्रिय रहकर अपनी शक्ति इसके विरुद्ध युद्ध करने में लगावे, तो तभी हम ब्रह्मचर्य के लिये उचित वातावरण का निर्माण कर सकेंगे।

आज हमारी शिक्षा से धर्म को निकाल दिया गया है, यह भी उचित नहीं। हमारा राष्ट्र धर्म निरपेक्ष है, इसका यह मतलब नहीं है कि वह अधार्मिक या धर्म विरोधी है। धर्म निरपेक्षता का अर्थ है—प्रत्येक पूजा व उपासना की विधि को पूर्ण स्वतंत्रता है। हमारा राष्ट्र सभी धर्मवालों के प्रति एक-सा समानता का व्यवहार करता है। यह तो शुभ संकल्प है। पर, इसका अर्थ हम लोगों ने अपनी दूषित भावना के पोषण के लिये मनमाना लगा लिया है। शिक्षा में धार्मिक शिक्षा को—दूसरे शब्दों में उन सब उदात्त सिद्धान्तों, महान् पुरुषों की जीवनानुभूतियों को स्थान मिलना चाहिए—जिसे पढ़कर विद्यार्थी श्रेष्ठ भावना से अनुप्राणित हों और उनके मन में किसी दिव्य संकल्प व उद्देश्य का उदय हो। यदि ऐसा कर सके, तो विद्यार्थी-जीवन में स्वयं ही प्रभा का प्रवेश होगा, उनमें मेधाशक्ति का विकास होगा और संयम का सुधास्वाद जब उनको मिल जायगा, तो वे फिर जीवन भर काम-लोलुपता के शिकार नहीं होंगे।

संयम :

ब्रह्मचर्य का साधारण अर्थ केवल वीर्य-रक्षा है। पर, यह कार्य तभी निष्पन्न हो सकता है, जब कि हम संयम से रहें। संयम का अर्थ है—मन सहित अपनी इन्द्रियों को काबू में रखना। इन्द्रियों को काबू में रखने का अर्थ यह नहीं है कि संसार के सभी सुखों से इन्द्रियों को वंचित कर देना। उचित योग संयम ही है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श व शब्द—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। रूप का अतियोग हो और न अयोग—दोनों के बीच का पथ हमारे लिए श्रेयष्कर है। भूखे भी न रहो और न इतना खाओ कि तुम अपनी पाचन-क्रिया ही गँवा बैठो। रूप को इतना मत देखो कि अन्धे ही हो जाओ।

संयम वाणी का भी होना चाहिए। फालतू बकबक करना अपनी शक्ति को बरबाद करना है। ज्यादा बोलनेवाला—असत्य भाषी होता है। मित भाषण—वाणी का संयम है।

सदाचार :

हमारा आचरण ऐसा हो जो सब को प्रिय लगे। हमारा उठना, बैठना, बोलना, चालना, बात करना और दूसरों के साथ किसी भी प्रकार का बर्ताव—एक

शिष्ट व्यक्ति का हो। हमारे सोचने, विचारने, बोलने और करने में अन्तर न हो। मनसा, वाचा, कर्मणा हम सब से निर्मल हों, यही सदाचार है। सदाचार सच्चा हो, उसमें सादगी हो, आडम्बर न हो।

आज असदाचरण इतना बनावटी व आडम्बर प्रिय है कि हम असली सदाचार को समझ नहीं पाते। आचरण की श्रेष्ठता व पवित्रता का स्थान ढोंग व बनावट ने ले लिया है। भीतर कुछ, बाहर कुछ, कदाचार है; सदाचार नहीं। आचरण की निर्मलता हमारे जीवन को उज्ज्वल व ग्रन्थिहीन बनाती है। सदाचरण हमारे जीवन को सुखी और प्रफुल्ल बनाता है, शान्त व सहिष्णु बनाता है।

'सुनो स्वर्ग क्या है, सदाचार है।'

वास्तव में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त का यह कथन अक्षरशः सत्य है। सच्चा स्वर्ग तो सदाचार में है। सदाचार से यह पृथ्वी सब प्रकार से आनन्दमयी बन सकती है। सब एक दूसरे के प्रति सच्चा व्यवहार करें, तो यह धरती जो हमको नरक मालूम पड़ती है, दुःख व यंत्रणा की खान प्रतीत होती है—वह सुख व समृद्धि में बदल जायगी। जहाँ सुख है, समृद्धि है, नैरोग्य है; अपमृत्यु नहीं, वेदना, पीड़ा नहीं, चिन्ता, दैन्य नहीं—वही तो स्वर्ग है।

ब्रह्मचर्य, संयम व सदाचार हमारे व्यक्तिगत जीवन को, समाज को, राष्ट्र व विश्व को सुखी बनाने की एक मात्र कुंजी हैं। इनके अभाव में हम चाहे नीरोग व सुखी होने की लाख कोशिश करें, चाहे आकाश-पाताल एक कर दें, वैज्ञानिक आविष्कारों व सुख-सुविधाओं का अम्बार लगा दें, हमें कभी भी आरोग्य व सुख प्राप्त नहीं हो सकता। तृष्णा की अग्निज्वाला में हम पतंग बनकर जलते रहें, इससे हमें शान्ति व सौमनस्य प्राप्त नहीं हो सकता। आग, ईंधन व घी से बुझती नहीं। योग से योग की आग शान्त नहीं हो सकती! भौतिक सुख हमें शान्ति नहीं दे सकते। संयम के बाँध को तोड़ने से हम बहेंगे और डूबेंगे ही—यह हमारे निस्तार का रास्ता नहीं। संयमविहीन जिन्दगी रज्जुविहीन तरणी की तरह है, जो लहरों के थपेड़ों को खाती इधर-उधर भटकती-भटकती अथाह जल में डूब जाती है।

ब्रह्मचर्य, संयम व सदाचार को अपना कर हम अपने मानव जीवन को सफल बना सकते हैं। अर्थ व काम के आदि में धर्म हो और अन्त में मोक्ष हो तभी पुरुष का पुरुषार्थ सफल है। केवल अर्थ व काम—पशु से भी हीन वृत्ति है। धर्मानुकूल अर्थ व काम—हमारा सच्चा पुरुषार्थ है। महर्षि वेदव्यास ने भी ऊर्ध्व बाहु हो हमें यही दिव्य सन्देश सुनाया था।

—०—

११. यौवन और सौन्दय-रक्षा

मनुष्य के मन में यौवन के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, गहरी आसक्ति है, मादक ममता है; लेकिन, बहुत कम सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें सही रूप में यौवन प्राप्त होता है। यौवन का अर्थ—केवल शरीर के सभी अंगों का पूर्ण प्रस्फुटन मात्र नहीं, वह मन की भी वह ओज भारी उमंग है—जिसमें आनेवाले कल की चिन्ता नहीं, जिस पर बीते हुए कल का भार नहीं, वह केवल वर्तमान को जानता है, केवल वर्तमान को ! यौवन में उषा की तरह अरुणाई, मध्याह्न की तरह तेज, चाँदनी की तरह स्निग्धता और प्रभात की तरह स्फूर्ति होती है। यौवन बरसाती नदी की तरह उफनता-बहता है, उसमें होश कम, जोश अधिक होता है।

यौवन में आदमी का मन खतरों को बुलाता है। यौवन केवल आये हुए खतरों से टकराता है, ऐसी बात नहीं। वह तो खतरों को निमंत्रण देता फिरता है। निर्भयता व अनवरत श्रमशीलता यौवन के सामान्य गुण हैं। इस प्रकार का यौवन हमारी साधना का ही प्रतिफलन है। वह ऊपर से बरसता नहीं, वह तो श्रम से प्राप्त किया जाता है।

यौवन का सम्बन्ध उम्र से नहीं। देखने में आता है, करोड़ों-लाखों नामधारी युवक—सही अर्थों में युवक नहीं, उनमें न उमंग है, न उत्साह। उनकी वाणी में निराशा, आँखें निस्तेज, मन चिन्तित व शरीर आक्रान्त—फिर किस आधार पर उन्हें युवक कहकर पुकार सकते हैं। एक तरफ हमको बहुत से बूढ़े मिलेंगे, जिन पर उम्र ने चाहे उनके शरीर पर थोड़ा असर डाला है, पर उनके मन में सब प्रकार की उमंग लहरा रही है, जो आज भी जीवन के जोश से भरे हुए हैं। जिन पर न मौत की डरावनी छाया है, और न चिन्ताओं का विकराल भूत ! जो निश्चिन्त और निर्भय हैं और जो सब प्रकार के खतरों को उठाने के लिये तैयार हैं, ऐसे युवक ही राष्ट्र की अमूल्य सम्पदा हैं।

यौवन बनाये रखने की आकांक्षा चाहे कितनी ही प्रबल हो, उससे काम नहीं चल सकता। यौवन—शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का नाम है। नियमित आहार-विहार के बिना यौवन ठहर नहीं सकता।

यदि हम नियमित आहार, विहार, व्यायाम और संयम का बराबर ध्यान रखें, तो हमारा जीवन जरा विहीन हो सकता है। संसार के जितने भी महापुरुष, सन्त, महात्मा, त्यागी, तपस्वी हुए हैं, वे सब युवक रहे हैं। उनकी उम्र बढ़ती गई; पर, इससे उनकी कार्य-शक्ति कभी कम नहीं हुई, बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उनको कभी बुढ़ापा नहीं आया। उत्साह अमर यौवन का अमृत निर्झर है; उत्साह को बनाये रखने के लिए शारीरिक सबलता व स्वस्थता आवश्यक है, साथ ही मन की चिन्ता द्विधा विहीन स्थिति।

यौवन व सौन्दर्य का अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य सौन्दर्य का उपासक है, पुजारी है और सौन्दर्य का प्रेमी है। हरेक मनुष्य चाहता है कि वह सुन्दर बना रहे। आज तो अपने को अधिक-से-अधिक सुन्दर बनाने की होड़ लग रही है।

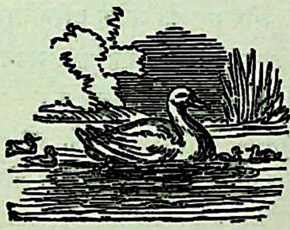
पर, याद रखें—सौन्दर्य बाहरी वस्तुओं में नहीं, हजारों प्रकार के कृत्रिम प्रसाधनों में नहीं; वह न क्रीम में है, न पाउडर में और न लिपस्टिक में। जब तक शरीर नीरोग न हो, जब तक मन स्वस्थ-शान्त न हो, तब तक शरीर में लावण्य की तरलता प्रकट नहीं हो सकती और न कान्ति ही जगमगा सकती है।

महापुरुषों के मुखारविन्द की ओर ध्यान दें, आपको उन पर लावण्य की दिव्य प्रभा फूटती नजर आयेगी। दूसरी ओर जो व्यक्ति असंयमी और कदाचारी हैं, वह चाहे खूब मलमल कर स्नान करें, साबुन व पाउडर से अपने आप को खूब सजा लें, इससे उनके चेहरे पर न सौन्दर्य प्रकट हो सकता है और न आकर्षण पैदा हो सकता है।

यौवन और सौन्दर्य-रक्षा का एक ही उपाय है—महान् उद्देश्य और उसकी प्राप्ति के लिए अनवरत साधना। जीवन का उद्देश्य कोई बड़ा बनाइये। तभी यौवन स्थिर रह सकता है और सौन्दर्य बना रह सकता है। यदि जीवन को भोगवादी बनावेंगे, तो यौवन असमय में ढल जायेगा, मुख झुर्रियों से भर जायगा, आँखें कोटरशायिनी हो जावेंगी और उनके नीचे काली रेखा जम जावेगी, चेहरा डरावना, कुरूप व भद्दा हो जायगा। कर्त्तव्यशीलता, तप, त्याग व संयम—शरीर को सबल व स्वस्थ रखेंगे तथा मन की निर्मलता मुखमंडल पर चमक उठेगी। मुख हमारे मन का दर्पण है, हमारे विचारों का प्रतिविम्ब है।

यौवन व सौन्दर्य हमारे सात्विक भोजन और सात्विक विचारों का दूसरा नाम है। तामसिक व राजसिक भोजन तथा तामसिक व राजसिक विकार शरीर को रुग्ण बनाते हैं, मन को अशान्त रखते हैं, इससे हमारा शरीर जीर्ण, जर्जर और मन उत्क्षिप्त और उद्भ्रान्त हो जाता है। हम स्वयं में स्थित नहीं रह सकते, जब स्वयं में स्थित अर्थात् 'स्वस्थ' नहीं, तो फिर कहाँ का यौवन और कहाँ का सौन्दर्य! स्वस्थ, पुष्ट, मांसल, सुगठित शरीर में ही सौन्दर्य की आभा व दीप्ति फूटती है।

हम चिर युवा व चिर सुन्दर रह सकते हैं, उसका पथ संयम का है, योग का नहीं; उसका पथ सदाचार का है, कदाचार का नहीं; उसका पथ त्याग का है, आसक्ति का नहीं।



१२. आदर्श दिनचर्या एवं ऋतुचर्या

हमारी दिनचर्या का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। हम रात-दिन चौबीस घण्टों को किस प्रकार व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन की सुख-समृद्धि एवं आरोग्यता निर्भर है। अधिकांश लोगों की कोई व्यवस्थित दिनचर्या नहीं। कभी देरी से उठे और कभी जल्दी; कभी भोजन जल्दी कर लिया, तो कभी देरी से; कभी सोये तो खूब सोये और कभी नींद की इतनी कमी रखी कि दिन में भी ऊँघते रहे—इस प्रकार जीवन को अनियमित, असंयमित और अव्यवस्थित ढंग से चलाया जाता है, जिसका नतीजा है—जीवन में असफलता, बीमारियाँ और व्यर्थता।

हम आदर्श दिनचर्या के अभाव में जीवनी-शक्ति को यों ही नाश कर देते हैं। स्वास्थ्य को बिगाड़ लेते हैं और मन को अनेक दुश्चिन्ताओं के जाल में फँसा लेते हैं। जिन व्यक्तियों का जीवन नियमित नहीं हैं, अपना कार्य न समय पर कर सकते हैं और न जीवन में सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम अपने जीवन को आदर्श दिनचर्या व रात्रिचर्या के अनुसार चलावें, तो हम व्यर्थ की परेशानियों से तो बचेंगे ही, सफलता के पथ को प्रशस्त कर लेंगे और सर्व सिद्धियाँ हमें स्वतः वरण करेंगी।

यों सभी मनुष्यों के लिये एक ही दिनचर्या को आदर्श नहीं कहा जा सकता। पेशों व धन्धों के अनुसार, उम्र व शारीरिक शक्ति को ध्यान में रखकर, दिनचर्या में किञ्चित् परिवर्तन हमेशा ही वाञ्छनीय है। आदर्श दिनचर्या की कसौटी यह है कि हमारे सारे कार्य व्यवस्थित हों; हमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करने को समान सुअवसर मिले; साधना और विनोद, ज्ञान की भूख व शारीरिक भूख; व्यक्तिगत व सामाजिक दायित्व, स्वार्थ व परमार्थ, सभी की सम्यक्रूपेण सिद्धि हो।

अपनी दिनचर्या को बराबर विवेक की तुला पर तोलते रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन कर लेना चाहिए। यहाँ हम सामान्यतः उन बातों का निर्देश करेंगे, जो सभी के लिये समान रूप से उपादेय हैं।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से सामाजिक परम्पराएँ धार्मिक रूप से चली आ रही थीं, उनमें आदर्श दिनचर्या के श्रेष्ठ तत्व थे। किन्तु, दुर्भाग्य से आज वे उखड़ रही हैं और हम पश्चिम की अन्धी नकल करने में लग रहे हैं।

दिनचर्या

प्रातः जागरण :

'जल्दी सोना और जल्दी उठना स्वस्थ व सुखी रहने का मूल मंत्र है।' ब्राह्म-मुहूर्त्त का जागरण जीवन का शुभारम्भ है। सुबह ४ वजे उठने की आदत डालना जीवन को सब प्रकार से सफल बनाना है। यह अमृत-वेला है। उषा का आगमन पूर्व दिशा को अनुरंजित कर देता है। पशु-पक्षी भी इस समय जाग पड़ते हैं। पक्षियों के मधुर कोलाहल से सारा वातावरण मुखरित रहता है। हवा में शीतलता व ताजगी रहती है। जल्दी उठने से मन में स्फूर्ति का संचार होता है। बुद्धि तेज बनती है, शरीर में शक्ति आती है, मन प्रसन्न रहता है, अंग-अंग उल्लास का अनुभव करते हैं।

यदि आप सुखी व नीरोग रहना चाहते हैं, तो आज से ही जल्दी उठने की प्रतिज्ञा कीजिए। सुबह का जागरण जीवन की दिव्यौषधि है।

सुबह जल्दी उठने से दिन भर के सारे कार्य बहुत जल्दी पूरे हो जाते हैं और आप अनुभव करते हैं कि सभी कार्य करने के बाद भी आपके पास समय बच गया है। आप उन अवकाश के क्षणों को बौद्धिक विनोद, मित्रों के साथ स्वरालाप और अपनी किसी प्रकार की मन की स्वस्थ रुचि के अनुपयोगी कार्यों (होबी) में लगा सकते हैं।

प्राचीन समय में भारतीय सुबह जल्दी उठते थे। जल्दी उठकर शौचादि से निवृत्त होना, स्नान करना, पूजा-पाठ व ध्यान करना तथा मन्दिर-देवालय जाकर प्रभु दर्शन करना—यह प्रत्येक भारतीय का नियम था। आज ये सारी बातें स्वप्न बन गई हैं। देरी से उठना—बड़े आदमियों का लक्षण या कुलक्षण है। रात को देर तक नाच, गान, सिनेमा, नाटक, खेल-तमाशे, मदिरा-पान आदि में जागते हैं और सुबह देर तक बिस्तरों पर पड़े रहते हैं। उषा के दर्शन तो उनके भाग्य में है ही नहीं। सुबह जब उठते हैं तो चेहरा मुरझाया हुआ, अलसाई हुई आँखें, निस्तेज आँखें और एक मात्र 'चाय-चाय' की रट—ये हैं भारतीय जो परिश्रमी सभ्यता के रंग में रँग रहे हैं।

नियमपूर्वक सुबह जल्दी उठने का स्वास्थ्य पर अत्यन्त शुभ व कल्याणकारी प्रभाव पड़ेगा।

ईश्वर-स्मरण :

निद्रा त्याग के साथ आप सब से पहले सृष्टि को बनानेवाले जगन्नियन्ता परमेश्वर का स्मरण कीजिए। स्तुति में कोई श्लोक या किसी सुन्दर छन्द का पाठ करें। ईश्वर के प्रति हम चिरकृतज्ञ हैं कि उसकी असीम कृपा से रात्रि सुख व शान्तिपूर्वक व्यतीत हुई और हम प्रभात की अमृत-वेला में जाग उठे हैं। मन में शुभ संकल्प करें, किसी प्रकार की चिन्ता व निराशा को पास में न फटकने दें। सब का कल्याण हो, सव स्वस्थ-सम्पन्न हों, इन उदात्त विचारों के साथ शय्या त्याग करें। उठते ही चेहरे पर मन्द मुस्कान रखें, अपने परिवार के जो सदस्य सामने आवें, उनसे मधुर शब्दों से अभिवादन करें।

उषः पान :

प्रभात-वेला में मुँह साफ करके ताम्र या मिट्टी के वर्तन में रखे हुए पानी को पीना—'उषः पान' कहलाता है। इससे आयुष्य की वृद्धि होती है और मल विसर्जन-क्रिया ठीक तरह से होती है। 'उषः पान' स्वास्थ्य के लिये हितावह है। नाक से भी पानी पीने का अभ्यास किया जा सकता है। प्रारम्भ में एक तोला पानी पीने का अभ्यास कर उसे आध सेर पानी तक वढ़ाया जा सकता है।

नासिका द्वारा जल-पान क्रिया हमारे जुकाम सम्बन्धी रोगों को निर्मूल करती है, वुद्धि को प्रखर वनाती है, नेत्र-ज्योति को ठीक रखती है।

शौचादि क्रिया :

प्रातः उठकर शौचादि क्रिया—मल-मूत्र-त्याग—अवश्य करना चाहिए। इससे शरीर हल्का व नीरोग वनता है। जो लोग सुवह शौचादि क्रिया नहीं करते हैं, उनके शरीर में दूषित परमाणु पहुँचते हैं। मल के वेग को रोकें नहीं, इससे बीमारियाँ पैदा होती हैं।

मल व मूत्र को जोर देकर विसर्जित न करें। यह सारी क्रिया सहज रूप से हो। मनीषी चरक ने भी कहा है—

नोर्ध्वं जानु चिरं तिष्ठेत्।
न वेगान् निःसारयेत् वलात्॥

मल-त्याग के वाद हस्तादि का प्रक्षालन पूर्ण रूप से हो।

मुख-शुद्धि :

दातौन करना हमारे नित्यकर्म का अनिवार्य अंग है। दाँत व जिह्वा की सफाई

करने से हमारा मुख स्वच्छ होता है, दाँत के दूषित अन्न-कण बाहर निकल जाते हैं। दाँतों की स्वच्छता दातौन या किसी अच्छे मंजन के द्वारा प्रतिदिन करें।

तैल-मर्दन :

शरीर पर तैल-मर्दन का अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे त्वचा चिकनी और चमकीली वनती है। मालिश से वहुत लाभ है।

व्यायाम :

सुबह के समय हल्के व्यायाम की आदत अवश्य डालनी चाहिए। इससे पाचन-क्रिया ठीक रहती है, अंगों का गठन सुन्दर व सुदृढ़ रहता है और कार्य-शक्ति का विकास होता है। प्रभात-भ्रमण, तैरना, घुड़सवारी आदि भी अच्छे व्यायाम हैं। अपनी रुचि, सुविधा, शारीरिक शक्ति व वय के अनुसार व्यायामों का चुनाव व परिवर्तन होना चाहिए।

स्नान व प्रभु-स्मरण :

स्नान के लिये शीतल जल का व्यवहार करें। शीत में गुनगुने जल को काम में लिया जा सकता है। नदी का बहता जल स्नान के लिये सबसे उपयुक्त है। कुएँ का तुरन्त का निकाला हुआ जल स्नान के काम में लाना हितकर है। स्नान शरीर की शुद्धि का प्रमुख साधन है। इसके द्वारा थकान दूर होती है, आलस्य भागता है और शरीर का मल दूर होकर उसे कान्तिमय बनाता है।

शरीर पर पानी डालना मात्र स्नान नहीं। स्नान में सारे अंग-प्रत्यंगों को मल-मल कर धोना चाहिए। स्पंज या गीले मोटे कपड़े से शरीर को रगड़ना भी अच्छा है।

स्नान करने के बाद शरीर स्फूर्तिमय और मन उमंगमय बनता है। स्नान के बाद अपने विश्वास व धर्म के अनुसार पूजा-पाठ, ईश्वर-स्मरण या श्रेष्ठ ग्रन्थों का पाठ अवश्य करना चाहिए। इससे मन निर्मल व शुभ संकल्पोंवाला बनता है। भक्ति जीवन की शक्ति है। भगवान् पर विश्वास करनेवाला न संसार के क्षणिक प्रलोभन में फँसता है, न भय से घबड़ाता है, न कुत्सित कर्म में फँसता है। धार्मिक ग्रन्थों के पठन व मनन से चारित्रिक शुद्धता आती है, नैतिक बल का संचार होता है और कर्म शुभ व लोकसंग्रही बनते हैं।

स्वल्पाहार व भोजन :

भोजन का समय वय, व्यवसाय व सुविधा से सम्बन्धित है। भोजन के प्रकार व मात्रा का भी एक नियम नहीं। सुबह धारोष्ण दूध का नाश्ता सबसे अच्छा है। नाश्ते में तली हुई चीजें ठीक नहीं। मट्ठा, दूध या दही ठीक है। मक्खन-रोटी भी उपादेय है। नाश्ता करनेवालों को भोजन का समय बारह बजे रखना चाहिए। सुबह नौ बजे भोजन करनेवाले विना नाश्ते के भी काम चला सकते हैं। भोजन सुस्निग्ध, सुपाच्य व सर्वांगीण हो। भोजन में सादगी व स्वच्छता हो, फलों का व हरी शाक-सब्जी का व्यवहार ज्यादा हो।

अर्थार्जन :

जीवन वहुत संघर्षमय है। सभी को आजीविका के लिये आफिस, दफ्तर या दूकान जाना ही पड़ता है। दिन भर काम करने के वाद ऐसा लगता है, शरीर थक गया है, मन उदास है, दिमाग खाली है—पर, ऐसा क्यों हुआ ? लगता है, आप जो आजीविका के लिये काम करते हैं, उनमें आपको रुचि नहीं, आपको जवरन् काम करने पड़ते हैं, आपकी विवशता व मजबूरी आपको सबसे अधिक श्रान्त-क्लान्त कर देती है।

इस सम्वन्ध में एक ही वात कही जा सकती है। आप जो भी काम कर रहे हैं, स्वेच्छा से या अनिच्छा से, सवाल अव यह नहीं। अव प्रश्न है, सामने के काम को रसमय व आनन्दमय वनाना। आप जो भी काम करें, मन लगा कर करें, प्रसन्न मन से करें, इससे काम में थकान नहीं आवेगा, वह काम भार बनकर आपके शरीर व मन को तोड़ेगा नहीं; आपके बल्कि उल्लास को बढ़ावेगा। अर्थार्जन का काम यों रसमय नहीं; पर, आप का मन उसको रसमय भी वना सकता है और विषमय भी।

वीच में यदि आपको अवकाश मिले, तो दस मिनट लेट जावें। शरीर को एकदम शिथिल छोड़ दें, मन को विचार शून्य, दिमाग को निश्चिन्त—आप इस दस मिनट के अनुद्विग्न, शान्त वातावरण में अपने में नवीन शक्ति के संचार का अनुभव करेंगे। आपका सारा मानसिक तनाव कम हो जायगा और आप अपने में सहज शान्ति की उपलब्धि करेंगे। इस प्रकार आजीविका के नीरस धन्धों में भी इस का स्रोत वहाया जा सकता है। बीच-बीच में अपने साथी कर्मचारियों, मालिकों या सहकारियों के प्रति आपकी विनोद वृत्ति और सहानुभूति पूर्ण मानवीय भावना आपको सर्वप्रिय वनाने में सहायक हो सकती है। कर्त्तव्य-निष्ठा से आप जो भी करेंगे, उन कामों से आपको मानसिक तुष्टि मिलेगी।

रात्रिचर्या :

शाम के होते ही जीविका का काम वन्द कर देना चाहिए। शौचादि से निवृत्त होकर टहलना स्वास्थ्य के लिये सब से अच्छा है। भोजन भी देर से नहीं करना चाहिए। भोजनोपरान्त चहलकदमी की जा सकती है। विद्यार्थी वर्ग अपना समय पढ़ने में व दूसरे लोग बौद्धिक विनोद या यदाकदा नाटक आदि देखने में विता सकते हैं। भोजन के वाद मित्रमंडली का जुड़ना, देश, जाति या विश्व की चर्चा करना, धार्मिक प्रवचनों का सुनना—सव प्रकार से हितावह हैं।

एक वात का पक्का नियम बनाना जरूरी है—दस वजे या नौ वजे सो जाना। यदि हमारी आदत जल्दी सोने की नहीं होगी, तो हम जल्दी उठ नहीं सकेंगे। शरीर को पूर्ण विश्राम, प्रगाढ़ निद्रा का सुख नहीं मिलेगा तो हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। अतः निद्रा को रोककर, रात के बारह वजे तक खेल, तमाशा या सिनेमा देखना—किसी प्रकार भी उचित नहीं।

आज यह दुर्भाग्य पूर्ण वात है कि हमारे नगर गन्धर्व नगर की तरह रात भर जगमगाते रहते हैं। प्रगाढ़ अन्धकार जो गहरी नींद के लिए और आँखों की ज्योति के लिए आवश्यक है, उसको विजली के प्रकाश से छला जा रहा है। रात को भी दिन बनाने की होड़ लग गई है। कुछ दफ्तर या फैक्टरी रात के बारह बजे तक या रात-रात भर कर्म के कोलाहल से भरी रहती है, रात भर काम करने वाले जव सुवह निकलते हैं, तो लगता है कि चिमनियों के धुएँ या जली हुई राख बाहर निकाली गई हो।

आज की सभ्यता के ये अभिशाप हैं, उनसे बचने के लिये सरकारी स्तर पर कठोर नियम बनने चाहिए। रात के दस या ग्यारह वजे सारे शहरों में प्राचीन समय की तरह कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुसार तूर्य नाद होना चाहिए, जिससे सभी अपना काम वन्द कर समय पर सो जायें।

ऋतुचर्या :

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। रात के बाद दिन, दिन के बाद रात—यही जीवन का क्रम है। प्रकृति में भी परिवर्तन का चक्र रात-दिन घूमता रहता है। कभी सर्दी, कभी गर्मी और कभी वरसात। कभी उजेला, कभी अँधेरा। जीवन में भी बचपन, जवानी और बुढ़ापा—लगा रहता है। पशु-पक्षी, वनस्पति, नदी, पहाड़, धरती—सभी इस परिवर्तन का अनुभव करते हैं।

हमने काल के अनन्त प्रवाह को अनेक खण्डों में विभक्त किया है। वर्ष काल की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है, जिसको षट्ऋतुओं व बारह महीनों में बाँट दिया है। भारत भूमि की यह विशेषता है कि यहाँ ऋतुओं का क्रम एक के बाद एक आता रहता है, विविध प्रकार के दृश्यों से युक्त ऋतुएँ अपनी सुन्दरता से सज-धज कर इस भूमि पर नदी की तरह उतरती हैं और अपना कौशल दिखाकर चली जाती हैं और साल भर बाद फिर लौट आती हैं।

ऋतु-परिवर्तन का यह सौन्दर्य संसार के दूसरे देश में नहीं। कहीं सर्दी तो सर्दी ही सर्दी, कहीं गर्मी इतनी कि साल भर पिंड नहीं छूटता, कहीं बादल इतना अधिक कि आकाश कभी खुलता भी नहीं।

इन ऋतुओं के परिवर्तन का हमारे शरीर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, अतः स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ऋतु के अनुसार भोजन व रहन-सहन में परिवर्तन वाञ्छनीय है। ऋतु के अनुसार जीवन-चर्या होनी चाहिए। भोजन की मात्रा व प्रकार ऋतुओं के अनुसार बदलते रहना चाहिए। हमारा शरीर वात, पित्त व कफ की साम्यावस्था से नीरोग रहता है, उनमें वैषम्य न हो, यदि इनमें से कोई भी कुपित हो गया, तो शरीर का यंत्र गड़बड़ा जाता है।

सर्दी, गर्मी व वर्षा के मौसम को आचार्यों ने निम्न षट्ऋतुओं में विभक्त किया है—

वसन्त—फाल्गुन-चैत्र,
ग्रीष्म—वैशाख-ज्येष्ठ,
वर्षा—आषाढ़-श्रावण,
शरद्—भाद्रपद-आश्विन,
हेमन्त—कार्त्तिक-मार्गशीर्ष और
शिशिर—पौष-माघ ।

कुछ विद्वान् वसन्त को चैत्र-वैशाख में मानते हैं, उनके अनुसार महीनों का क्रम बदल जायगा।

वसन्त :

यह ऋतुराज है। प्रकृति में यौवन आ जाता है। आम्र मंजरी पर कोयल कुहू-कुहू करती है। यह ऋतु गाने-बजाने और नाचने के लिए सबसे उपयुक्त है। भ्रमण इस ऋतु में पथ्य है। जंगलों में घूमना, खूब आनन्द मनाना इस ऋतु के अनुकूल है।

इस ऋतु में कफ कुपित होकर रोग पैदा करता है, अतः, वमन और रेचन दोनों आवश्यक हैं। दिन में सोना नहीं चाहिए, इससे कफ-वृद्धि होती है। जौ व गेहूँ अच्छा भोजन है। भारी भोजन इस ऋतु में न करें। अरिष्ट व आसव इस ऋतु में उत्तम है। रंग-विरंगे फूलों का आनन्द व फलों का आस्वादन इस ऋतु की विशेषता है।

ग्रीष्म :

यह भयंकर ऋतु है। शरीर का रस सूखने लगता है। पसीना बहने से पानी का भाग कम हो जाता है। इस समय गर्म पदार्थ हानिकर हैं। मधुर रस का प्रयोग इस ऋतु में आवश्यक है।

बेल व बादाम का शर्बत, ठंडाई, छाछ इस ऋतु में लाभप्रद पेय हैं। ठण्डे पानी का प्रयोग करें। बर्फ से बचें। आज बर्फ का बेहद रिवाज हो गया है, पर, जो आनन्द मिट्टी के बर्तनों में रखे ठंडे पानी का है, वह बर्फ में कहाँ। बर्फ अन्ततः हानिप्रद है। गर्मी से जो बहुत बचते हैं और तहखानों या वात नियंत्रित शीतल स्थानों में रहते हैं, वे गर्मी या लू के शीघ्र शिकार हो जाते हैं। अतः शरीर को गर्मी व सर्दी को सहनेवाला अवश्य बनाइये।

सुबह व रात्रि में टहलना इस ऋतु के लिए बहुत आवश्यक है। चावल, खीर व श्रीखंड का सेवन करना चाहिए।

वर्षा :

कवियों ने काली कजरारी घटाओं का बहुत मनोहर वर्णन किया है। बिजली की चमक, धारासार वृष्टि, पपीहे की पीऊ-पीऊ, दादुर की टर्र-टर्र, सभी आनन्दप्रद होते हैं। इस ऋतु में काम-काज कम हो पाता है, इससे जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। भूख कम लगती है। पाचन-क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है।

इस ऋतु में आम, नीबू व अदरख विशेष उत्तम है। बरसाती पानी का प्रयोग न करें। इस ऋतु में जठराग्नि का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

'रोगाणां शारदी माता' इस ऋतु में बीमारियों के होने का ज्यादा डर रहता है—अतः शरद् ऋतु को रोगों की माता कहा गया है। चाँदनी रातें सुहावनी होती हैं, पर, उन्हीं के लिए जो नीरोग हों। इस ऋतु में पित्त कुपित होता है, अतः विरेचन व वमन के द्वारा शरीर की गर्मी को शान्त करना चाहिए। गन्ने का उपयोग करें। कार्त्तिक के मास को यमदंष्ट्रा कहा है। इसमें थोड़ा खाना उचित है। ज्यादा खाने से अजीर्ण की संभावना है।

हेमन्त व शिशिर :

ये दोनों ऋतुएँ शरीर को पुष्ट बनानेवाली हैं। इनमें जठराग्नि प्रबल होती हैं। अतः स्निग्ध, मधुर व गरिष्ठ भोजन इस ऋतु के अनुकूल है। तैल-मर्दन व व्यायाम करें। केशर व कस्तूरी का लेप हो। पौष्टिक पदार्थों के सेवन के साथ बाजीकरण औषधियों का उपयोग इस ऋतु में किया जा सकता है। शीत ऋतु में धातु भस्म का प्रयोग शरीर में नया यौवन ला देता है, कायाकल्प का अनुभव होने लगता है। किसी दक्ष वैद्य के निर्देशन में रसों का प्रयोग होना चाहिए। स्मरण रहे, योग्य प्रयोक्ता के विना अमृत भी विष का काम करता है और सुदक्ष वैद्यों के द्वारा विष भी अमृत बन जाता है।

स्वास्थ्य का महत्त्व :

दिनचर्या व ऋतुचर्या आदर्श हो, तभी हम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। स्वास्थ्य की कोई कीमत नहीं। बड़े-बड़े राजा, बड़े से बड़ा धनवान—सारा राज्य चुरा कर और खजाना खाली कर भी स्वास्थ्य का सुख खरीद नहीं सकता। नीरोग व्यक्ति ही संसार के सुख का उपभोग कर सकता है। रोगी से पूछो, स्वास्थ्य की कीमत क्या है ? रोगी की मानसिक पीड़ा असीम और व्यथित करने वाली हैं, उसे केवल वही जानता है। भगवान् करे, संसार में कोई बीमार न हो, सब नीरोग हों। यह हमारी मंगलकामना है।

लेकिन, केवल मंगलकामना क्या कर सकती है। स्वस्थ रहना कुछ दैव व प्रकृति के अधीन है, कुछ समाज व राष्ट्र के; पर, इसका दायित्व हमारा व्यक्तिगत ज्यादा है।

हमारा जहाँ तक वश है, हमारा जहाँ तक ज्ञान है, उसका उचित व सतर्क उपयोग किया जाय, तो हम बीमारी से बच सकते हैं। कपड़े को मैला करना बुद्धिमानी नहीं, उसे मैला न होने देना बुद्धिमत्ता की निशानी है। हम बीमार न पड़ें, इसी में हमारा महत्व है। बीमारियों के विरुद्ध हमारा अभियान तभी सफल हो सकता है, जब कि हम अपनी दैनिक चर्या और ऋतुचर्या को आदर्श रूप में ढालें।

अच्छी तरह से रहनेवाला मनुष्य ही सदा नीरोग रहकर, संसार के सुख व प्रकृति के सौन्दर्य का उपभोग करता हुआ, त्याग व संयम से जीवन को शतायु बनाकर, अपने जीवन को कृतकृत्य व सार्थक बना सकता है।

—०—

१३. गृहिणी स्वयं वैद्या है

बहुधा भारतवर्ष में देखा जाता है कि घरों (परिवार) में रहनेवाली स्त्रियाँ, वृद्धा घरेलू (दैनिक जीवन) चिकित्सा को वे स्वयं ही कर लेती हैं और ९९।१०० प्रतिशत उनके सुव्यवस्थित उपचार से लाभ होता है, जिससे रोगों से होनेवाले अपव्यय से बच जाती हैं तथा उस बचे हुए द्रव्य से अन्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर अपना सुख-सुविधापूर्वक जीवन यापन करती हैं। अतः कहा गया है कि गृहिणी स्वयं वैद्या है।

यद्यपि गृहिणी किसी कालेज अथवा सरकार से मान्य डिगरी (सर्टिफिकेट) प्राप्त नहीं करती, फिर भी वह इतनी कार्य-दक्षा होती है कि छोटे-मोटे चुटकुलों के द्वारा उनके रोगों को शमन करती रहती है। जो गृह-सदस्य डाक्टरों के उपचार द्वारा सारे शरीर और धन से कमजोर हो गये हैं तथा जिन्हें मीठा उत्तर मिल गया है कि तुम और किसी भी व्यक्ति वैद्य या डाक्टर की राय ले सकते हो, ऐसे हताश रोगियों को हमारी माता व बहिनों ने स्वाभाविक परम्परागत विज्ञान के द्वारा घर में रहनेवाली वस्तुओं से रोगमुक्त करके आश्चर्य चकित कर दिया है। तपेदिक जैसे भयानक पैशाचिक रोग को प्रतिदिन घर में होनेवाले यज्ञ की भस्म का क्षार बनाकर उचित मात्रा से दूर कर दिया।

प्राथमिक-चिकित्सा देने में तो बड़ी ही निपुण होती है—आग से जलने पर केवल साग के लिये आये आलुओं को कच्चा पीस जले स्थान पर लगाने मात्र से ही जलन शान्त कर देती है और फफोले भी नहीं पड़ते। केवल शीत जल की पट्टी बाँधने से ही कटे स्थान से अप्रतिहत गति से बहनेवाले खून को बन्द कर देने में तो कमाल ही दिखलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सोंठ, मिर्च, पीपल, नमक आदि घरों में प्रतिक्षण रहनेवाले द्रव्य मात्र से ही चिकित्सा कर हजारों रुपया प्रतिवर्ष बचा लेती है और परेशानी भी नहीं होने देती, अतः जिन्दगी को सुखमय बना देती है। बच्चा को जब कभी सर्दी, खाँसी, दर्द उठने लगे, तो दो पैसे का बच मँगा कर घर से सोंठ, मिर्च, पीपल आदि ले मधु के योग से चटा दिया करें, बच्चा

ठीक हो जायगा। यदि किसी के वच्चे को डाक्टर के यहाँ भेजती, तो ५-७ रुपया तक दिन में ही व्यय हो जाता और समय भी लगता। समय और धन—दोनों को ही वचानेवाली यह गृहिणी ही है।

यदि वच्चे को दस्त लगे हैं तब वह छुहारे की गोलियाँ बना लेती है, जिसमें हींग, जीरा, वच, अफीम आदि छुहारे में भर कर कपरौटी कर भूभर में दे देती है। सब छुहारा सहित औषधि मिल जाती है, उसे पीस लेती है, यही छुहारे की गोलियाँ हैं। यहाँ १-२ गोली से ही वच्चा ठीक हुआ। अतिसार और कय (वमन) तुरन्त ही बन्द हुए। सिर-दर्द में तो दो पैसे का कपूर मँगा घी में मिला सिर-दर्द को दूर कर लेती है। इसको मस्तक, कनपटी पर लगाती है तथा नौसादर और चूना १ शीशी में जरा पानी डाल भर देती है, कार्क अच्छी तरह बन्द कर देती है, जव सुंघाया कि दर्द रफ्फू चक्कर हुआ।

आँखों में लगाने से काजल से लेकर अनेक प्रकार के लेपों को तैयार करती है, जिनमें उनका "रगड़" बहुत ही प्रसिद्ध है। लगाते-लगाते ही आँखें, फुली, जाला, माड़ा सब दूर हो जाते हैं—आवश्यकतानुसार एक लेप को लिखे देता हूँ—फिटकिरी २ रत्ती, अफीम ६ रत्ती, रसौत, वादाम की सीठी २, वताशा २।

विधि—प्रथम रसौत को पानी में घिसें, अनन्तर फिटकिरी घिसें, तब अफीम डालें। बादाम को तो सव से पहिले ही घिस रक्खें। उसी में सबको घिसते जायँ, पुनः वताशा भी डालकर गर्म करके रखें, सर्दी से आँखें आ गयी हों या गर्मी से आ गई हों, फूल गयी हों, आँखें न खुलती हों। १ दिन के लगाने से ही लाभ हो जाता है।

वच्चा पैदा होने के समय केवल मेहतरानी या नाइन अथवा किसी वृद्धा को वुला लेती है और सुख-सुविधापूर्वक प्रसव करा लेती है। इस प्रकार से भारतवर्ष में ९५।१०० प्रतिशत प्रसव सावधानी और सुरक्षापूर्वक रात-दिन होते रहते हैं। किसी अस्पताल में जाने की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार धन और समय तथा परेशानी आदि सवसे ये गृहिणियाँ अनायास (स्वाभाविकता) से ही बचा लेती हैं।

जिस प्रकार लुकमानी हकीम ने किसी विश्वविद्यालय, कालेज आदि से डिग्री कोर्स किये विना ही लाखों-करोड़ों ही नहीं, वल्कि कहना होगा कि असंख्य लोगों की जानें वचाईं, ठीक उसी प्रकार से गृहिणियाँ भी प्रतिदिन अपनी सेवा करती रहती हैं। परम्परागत ज्ञान-विज्ञान में विशारद होकर अमुक शाक में हींग-जीरे का छौंक लगेगा तथा कासी फल में हींग, मेंथी का लगेगा, क्योंकि मेंथी वाई को दूर करती है और कितनी तादाद में हींग या जीरा अथवा अन्यान्य वस्तुएँ पड़ेंगी, इनका पूर्ण ज्ञान उन्हें हो जाता है। उन्हें किसी तराजू या वाटों अथवा मापक यंत्रों की आवश्यकता

जीवेम :

नहीं होती, केवल हाथ में वस्तु ली और डाल दी। उन्हें यह अंदाज रहता है कि कितनी वस्तु में कितना द्रव्य पड़ेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि पदार्थ सुस्वादु और पवित्र तथा सुन्दर बनता है।

यदि किसी को भांग का नशा हो गया, तो वैद्य या डाक्टर के यहाँ नहीं भेजती। घर में शाक के लिये गाजर या आलू आये हैं, उन्हीं का अचार बना लेती है। जैसे ही अचार का पानी दिया कि नशों का पता भी नहीं रहता कि कभी नशा आया भी था। जामुन के पत्ते मँगाकर ठंडाई पीस-छान कर मीठा डाल पिलाती है, नशा हट जाता है। बिच्छू के काटने पर नौसादर और रीठा पीस कर रख दिया अथवा इन वस्तुओं के अभाव में आक के पत्तों का रस गाढ़ा कर दंश स्थान पर लगा दिया तथा गर्म-गर्म पत्ते उसी स्थान पर बांध दिये। वर्र, ततैया ने काटा कि लोहे का चिमटा ही दंश स्थान पर रगड़ दिया, पेट में दर्द हुआ कि पानी में २ लौंग डुबा ली और काला नमक डाल सोंठ की फंकी कराई और ऊपर से यह पानी पिला दिया, दर्द दूर हो गया। न इंजेक्शन की आवश्यकता हुई और न ही जरूरत पड़ी औषधि की।

यदि किसी को ६ डिग्री ज्वर हो गया, तो गृहिणी घबराती नहीं। तुरन्त ही आप एक पैर की ओर तथा बच्चों को तीनों हाथ-पैरों की तरफ बिठा देती है, और सफेद कपड़े से हाथ-पैरों के तलवों की मालिश करा देती है। थोड़ी देर में ही २ डिग्री ज्वर कम हो जाता है। स्मरण रहे कि उँगलियों की पोर की मालिश करनी चाहिए यानी एड़ी से उँगलियों तक।

वात के दर्द, न्यूमोनिया, पसली का दर्द या अन्य दर्दों में जिनमें लोग ऐस्प्रीन खाकर दिल कमजोर कर लेते हैं और उन्हें अक्सर हार्ट की बीमारी हो जाती है, उनको केवल 'फुलवा' नाम की दवा जिससे घर में ही बना लेती है उसी औषधि से ही आराम हो जाता है। ऊँचे-नीचे पैर के पड़ जाने से या गिर जाने के कारण पैर-हाथ मरोड़ खा जाता है, अतः नस इधर-उधर यानी अपने स्थान से हट जाती है, तो गृहिणी मालिश कर उसी समय ठीक कर देती है। वे अस्पताल में एक्स-रे का कई दिनों तक नम्बर की प्रतीक्षा नहीं करती है। किसी के हाथ-पैर का टखना निकल जाता है, उसको १।४ सेकेंड में ही ठीक बिठा देती है या टूटी हड्डी को केवल खिलाने की औषधि देकर व बांस की सीधी लकड़ी और तख्ती बनाकर बांधने से हड्डी ठीक प्रकार से जुड़ जाती है, जबकि अस्पताल में प्लास्टर चढ़ा देने से गलत जुड़ती देखी गई है और अनेक व्यक्ति टेढ़े और लंगड़े देखे जा रहे हैं।

नादान बच्चों की हँसली (कंधे) की जो गर्दन के नीचे दोनों ओर हड्डी होती है, झटक-पटक देने से अक्सर उतर जाती है, जिसके कारण बच्चा

रोता है, न सोता है, न दूध पीता है, आँखें सूज जाती हैं। उसे जो पीड़ा होती है, वही जानता है। गृहिणी उसी समय १ सेकेंड भी नहीं लगता है कि जरा-सा इशारे से ही हड्डी विठा देती है और घर की इतनी परेशानी को शीघ्र ही मिटा देती है। कहने या लिखने का तात्पर्य यह है कि यह गृहिणी घर में रहकर स्वयं वैद्या का कार्य-सम्पादन कर अच्छी सुख-सुविधा रखती है। परन्तु आज यह बातें केवल ग्रामीण क्षेत्रों में ही मिलती हैं, कारण वहाँ धार्मिकता है। पुरुष का कार्य किसी व्यवसाय द्वारा अपनी आर्थिक दशा को सुधारना है और गृहिणी का कार्य उस आर्थिक शक्ति का सदुपयोग करना तथा अपने वच्चों व गृह-सदस्यों, वृद्धों का लालन-पालन व सेवा करना और उनको शुभ मार्ग पर चलाना है। आधुनिक काल में शहरों की गृहिणियाँ केवल फैशन के चंगुल में फँसकर उपर्युक्त बातों की अवहेलना ही नहीं कर रहीं, वल्कि अपने शरीर को दुःखमय तथा पारिवारिक जीवन को अस्तव्यस्त वना रही हैं। जिससे चिन्ता देवी रात-दिन उन्हें सताती रहती हैं, क्योंकि आवश्यकताएँ इतनी वढ़ा ली हैं कि जीवन-यापन करना बड़ी टेढ़ी खीर हो गया है। यदि यही हाल रहा तो शारीरिक, मानसिक तथा दैनिक दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकतीं। यदि आजकल की गृहिणी न संभली और उसने अपना कार्य-क्षेत्र वेद-शास्त्रानुसार न बनाया तो वह भारत की भावी सन्तानों की उन्नति के लिये कलंक वन जायेंगे। अतः हम उन वीरांगनाओं का नाम लेते चले जा रहे हैं—

"राम, कृष्ण, शिवा प्रताप, जैसों की ये महतारी हैं।
इनने शिक्षा दे पुत्रों की विगड़ी वात संभारी हैं।।
आप मिट गईं लेकिन रक्खी लाज हमारे मान की।
सव दुनिया से वीर-बहादुर नारी हिन्दुस्तान की।।"

आज हम सीता, सावित्री, पद्मिनी और झाँसी की रानी को अपना शीश झुकाते हैं और उनके अनुकरण को भारत की गृहणियाँ अपनायें, यह हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

—०—

१४. स्त्रियों को बीमारियाँ और उनको दूर करने के उपाय

शक्ति को नारी कहते हैं। शक्ति ने जब-जब जैसे-जैसे काम किये तब-तब लोगों ने वैसे-वैसे ही नाम रख दिये, "एकैव मायायामे" यह अनेक नामोंवाली है, "प्रधानं प्रकृति शक्ति नित्या च विकृतिस्तथा।" इसी का नाम प्रकृति या माया भी है। यही सारे विश्व को अपने गुणों द्वारा बांधती है। इसी माया (स्त्री) के बिना सांसारिक कार्य नहीं चल सकता है यानी गृहस्थी जीवन-यापन करने के लिये सबला (स्वस्थ) अबला (स्त्री) की नितान्त आवश्यकता है।

आज के इस विचित्र युग में ९५।१०० प्रतिशत स्त्रियाँ अनेक रोगों से पीड़ित रहती हैं, जिनके कारण उन्हें सबला नहीं कहा जा सकता। स्त्रियाँ इन रोगों को मामूली समझती हैं, अतः लाज के मारे घरवालों से भी नहीं कहतीं, और रोग धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं। तब आलस्य अपनी पूर्ण शक्ति से अपना प्रभाव जमा लेता है, पड़े-पड़े काम में चित्त भी नहीं लगता, सिर चकराता रहता है, बार-बार प्यास लगती रहती है, शरीर पीला और कमजोर, कमर में दर्द, आँखों के नीचे अँधेरा आता है। उस समय घरवालों की आँखें खुलती हैं। इधर-उधर चिकित्सा-क्षेत्र में भटकते-भटकते कठिनता से मिलनेवाली इस मनुष्य देह को त्याग कर अपने प्यारों को रोता-विलपता छोड़ यमराज के घर चली जाती हैं। "शरीरं व्याधि मन्दिरम्" के अनुसार स्त्रियों को समय-समय पर अनेक रोग आकर घेर लेते हैं, जिनमें "अष्टग्रहों प्राणहरः प्रदिष्ट स्त्रीणामतस्तं विनिवारयेच्च" प्रदर रोग सबसे मुख्य है, क्योंकि यह धीरे-धीरे प्राणनाशक है। अतः इसे शीघ्र ही दूर करना चाहिए। यह दो प्रकार का होता है, श्वेत प्रदर और रक्त प्रदर। मिथ्या आहार-विहार से योनि द्वारा अधिक दिनों तक खून या अनेक रंग का रक्त या श्वेत पानी बहा करते हैं, उसे प्रदर कहते हैं। वैसे तो "द्वादशात्वत्सराद्रूर्ध्वमापञ्चाशत समास्त्रियः। मासि मासि भग द्वारा प्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत्॥" प्रायः सभी जानते हैं कि स्त्रियों को लगभग १२ वर्ष से ५० वर्ष की अवस्था तक स्वाभाविक रूप से प्रत्येक माह रजोधर्म होता है। जब यह होता है, तब ४-५ दिन तक बहता रहता है, फिर बन्द हो जाता है। रजोधर्म होना कोई रोग नहीं, बल्कि स्त्रियों के आरोग्य की निशनी है। जिस स्त्री को नियत समय पर ठीक रजोधर्म होता है, वह सदा हृष्ट-पुष्ट और

तन्दुरुस्त रहती है। पर जब दुष्ट रज बहुत ही ज्यादा बढ़ जाता है, शरीर टूटता है, अंगों में वेदना होती है एवं शूल की ही पीड़ा होती है, तब कहते हैं कि प्रदर हो गया है।

इसकी सामान्य चिकित्सा :—चन्दनादि चूर्ण तथा पुष्यानुग चूर्ण लेना चाहिए। तथापि "रक्तपित्त विधावेन प्रदरांश्चाप्युयाचरेत्" रक्त-पित्त में जिन औषधियों का प्रयोग करना होता है, उनको रक्त-प्रदर में भी प्रयोग करना चाहिए। यदि अशोक छाल २ तोला गाय के दूध में पकाकर मिश्री मिला पीवें और पके गूलर के फूलों का चूर्ण मिश्री मिलाकर लेने से रोग समूल नष्ट हो जाता है।

प्रदर रोग को जब बहुत दिन हो जाते हैं, तो यह अपना दूसरा रूप यानी "सोम" रोग रूप में परिणत हो जाता है। भींगी योनि से शीतल गन्ध रहित अधिक सफेद जल बहता रहता है, तब स्त्री कमजोर हो जाती है। शरीर और मस्तिष्क शिथिल हो जाता है। तालु सूखता है। बेहोशी यानी स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाता है अथवा कभी-कभी चक्कर भी आता है, जिसके कारण दौरे भी पड़ने लगते हैं। जम्भाई आती है, त्वचा रूखी हो जाती है इत्यादि लक्षणों से युक्त सोम रोग होता है। इस रोग में "सोम" धातु का नाश होता है। जिस प्रकार मनुष्यों को बहुमूत्र रोग होता है, ठीक उसी प्रकार स्त्रियों को सोम रोग होता है। स्त्रियाँ मूत्र वेग को कुछ सेकेंड तक भी नहीं रोक सकतीं। इस रोगवाली स्त्री की धोती सदा-सर्वदा यानी प्रत्येक समय भींगी ही रहती है, अतः उन्हें कहीं बाहर जाने पर बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। तो कहना यह पड़ेगा कि प्रदर रोग के अधिक दिन रहने पर सोम रोग और सोम रोग के अधिक दिन रहने पर मूत्रातिसार हो जाता है यथा :—

सोमरोगे चिरजाते यदा मूत्रमतिस्रवेत।
मूत्रातिसारं तं प्रादुर्बल विध्वंसनं परम्॥

इस रोग में बल तो बिल्कुल ही नहीं रहता, क्योंकि शरीर के जीवनीय पौष्टिक तत्व उस शीतल पानी द्वारा ही निकल जाते हैं। अतः रोगिणी मृत्यु के दिन गिनती रहती है और जीवन को भारस्वरूप समझती है। यहाँ यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि सोम रोग मूत्रमार्ग में और प्रदर रोग गर्भाशय में होता है। इसकी सामान्य चिकित्सा यह है कि शतावर्यादि चूर्ण तथा मुलेठी, आँवला, शहद और दूध मिलाकर पीने से भी सोम रोग दूर हो जाता है।

इसके अनन्तर यानी श्वेत प्रदर और रक्त-प्रदर एवं स्त्री-पुरुषों के रज-वीर्य के शुद्ध, निर्दोष और पुष्ट न होने आदि कारणों से आज भारत के लाखों घर सन्तानहीन हो रहे हैं। ऐसी स्त्रियाँ एक बच्चे का

भी मुख देखने में असमर्थ रहकर चिन्ता की ज्वाला में प्रतिक्षण जलती रहती हैं, जिससे हृदय की बीमारी और अपना घर बना लेती है। हृदय धक्-धक् धड़कने लगता है और जरा-सी देर में पसीना आता है। शरीर ठंडा लगता है और थोड़ी देर में ही गर्म लगने लगता है। बड़ी ही विचित्र अवस्था उस समय होती है, अतः इसकी चिकित्सा में मुक्तापिष्टी, आँवला, मुरब्बा में चाँदी के वर्क लगाकर खावें और अर्जुन की छाल दूध में औंटा कर ५-७ मुनक्का भी डाल लिये जायँ, छोटी इलायची और वंशलोचन ३ रत्ती डाल मिश्री मिलाकर दूध ऊपर से पी लिया जाय, तो अत्युत्तम रहेगा। जब हृदय रोग दूर हो जाय, तब शिवलिङ्गी आदि औषधियों-सा समन्वय कर यथा समय उचित अनुपान के साथ खाने से पुत्र-रत्न की भी प्राप्ति हो जाती है। जीवनीय गुण की औषधियों से युक्त खीर बनाकर खानी चाहिए।

योनि रोग बीस प्रकार के होते हैं। उदरवृत्ता, वन्ध्या, पुत्रघ्नी, अत्यानन्दा इत्यादि नामों से पुकारे जाते हैं। योनिकन्द भी एक रोग है, जो कि दिन में अधिक सोने से, अत्यधिक क्रोध करने से तथा अधिक परिश्रम करने और योनि छिल जाने से या नाखून लग जाने से योनि के भीतर घाव हो जाते हैं, तब चिन्तादि दोष कुपित होकर पीब और खून को इकट्ठा करके योनि में बड़हल के फल जैसी गाँठ पैदा कर देते हैं, उसे ही 'योनिकन्द' कहते हैं। इसकी दोष भेद से चिकित्सा करनी चाहिए तथापि "सर्वेषुयोनि रोगेषु वातघ्नः क्रम इष्यते। स्नेहनः स्वेदनोवस्तिर्वातजायां विशेषतः॥" खाने की दवा के साथ लगाने की औषधि भी आवश्यक है। जीरा, काला जीरा, पीपल, कलौंजी, सुगन्धित वच, अडूसा, सेंधा नमक, जवाखार, अजवाइन—इनको बारीक छान चूर्ण बना लें, पीछे जरा गर्म कर चीनी डाल लड्डू बना लें। इनको जठराग्नि के माफिक नित्य खाने से रोग समूल नष्ट होता है। यदि आपको इस जाल को दूर करना हो, तो निम्नलिखित तैल अवश्य लगावें। चूहे के मांस को पानी के साथ हांडी में डालकर काढ़ा बना लें, फिर उसे छानकर उसमें काली तिल्ली का तेल मिला मन्द-मन्द अग्नि से पकावें, जब पानी जल कर तेल मात्र रह जाय, तब उतार लें। उसे शीशी में भर कर रक्खें। इस तैल का फाहा भिगो कर योनि में गाँठ के ऊपर रखने से गाँठ गायब हो जाती है। योनि के रोगों की चिकित्सा—फाहा तर करके रक्खें, वर्त्ति बनाकर रक्खें, धूनी देवें तथा बफारा दें और प्रक्षालन व पिचकारी लगावें। यदि योनि टेढ़ी या तिरछी हो गई हो अथवा बाहर निकल आई हो, तो योनि को चिकनी और स्वेदित कर यानी तेल चुपड़ कर बफारों से पसीना निकाल

यथा स्थान स्थापित कर मधुर औषधियों का लेप बना योनि में लगावें, तथा टेढ़ी योनि को हाथ से बनावें और सिकुड़ी को फैलावें। बाहर निकली को भीतर बिठाल देवें। ये योनि के रोग मिथ्याचार, मिथ्याविहार, दुष्ट आर्तव, वीर्यदोष तथा दैवेच्छा से होते हैं। समय-बे-समय मर्दों की तरह स्त्रियाँ भी खाती रहती हैं। मछली प्रभृति विरुद्ध पदार्थ और प्रकृति विरुद्ध भोजन करती हैं। गरम मिजाज होने पर भी गरमागरम भोजन करतीं, शील प्रकृति में शीत पदार्थ खातीं, दिन-रात काम तृप्ति में रहतीं, खूब क्रोध और चिन्ता करती हैं। इन कारणों से मासिक खून गर्म होकर बीस प्रकार के ऊपर कहे योनि रोग पैदा हो जाते हैं। माता व पिता के रजवीर्य दोष के कारण जिस कन्या का जन्म होता है, उसे भी बीसों प्रकार के योनि रोग से कोई-न-कोई रोग अवश्य ही होता है। किन्तु दैवेच्छा सबसे प्रबल है।

नष्टार्तव रोग :—आर्तव माने रज। रजोधर्म न होना या कम होना या बिल्कुल भी न होना।

(१) शरीर में रक्त के कम होने के हेतु या सूख जाने से रजोधर्म होना बन्द हो जाता है।

(२) अधिक शीतलता से रक्त गाढ़े दोषों से मिलकर गाढ़ा हो जाता है।

(३) रक्त या गर्भाशय की रगों के मुँह बन्द हो जाने से।

(४) गर्भाशय के घावों से भर जाने पर रगों की तह बन्द हो जाती है।

(५) गर्भाशय से रजोधर्मवाले मार्ग में मस्सा पैदा होने के कारण, क्योंकि मस्सा से रजोधर्म का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

(६) स्त्री चर्बी बढ़ जाने से मोटी हो जाती है, तब रज के निकलने का मार्ग नहीं मिलता है।

(७) गर्भाशय का मुँह किसी ओर को घूम जाने से।

सामान्य चिकित्सा—वायुनाशक औषधि दें तथा पेडू पर लेप लगावें।

यदि ठीक नाद से रजोधर्म न होवे, तो यह हानि हो जाती है। यथा:—

आमाशय के रोग—भूख न लगना, अजीर्ण, जी मिचलाना, प्यास और आमाशय की जलन।

मस्तिष्क रोग—जैसे मृगी, सिर-दर्द, उन्माद, लकवा।

छाती के रोग—जैसे खाँसी, श्वास होना।

गुर्दे, जिगर के रोग—जैसे जलन्धर।

पीठ, गर्दन के दर्द—आँख, कान, नाक का दर्द, पित्तज्वर भी।

चिकित्सा—कमल की जड़ पीसकर खाने से रजोधर्म होता है।

नं० २—काला तिल ३ माशा, चिउरा ३ माशा और भारंगी ३ माशा—
इनका काढ़ा बना गुड़ डाल प्रातः-सायं पीवें।

नं० ३—कुमार्यासव में शहद मिलाकर दिन में ४ बार पीवें।

नं० ४—इन्द्रायन की जड़ को बारीक पीस छोटी अंगुली समान वर्त्ति योनि या गर्भाशय के मुख में रक्खें।

वंध्या रोग में—फल देना चाहिए।

गर्भस्राव—गिरते गर्भ में, कुम्हार जब वर्त्तन बनाता है और उस मिट्टी को पोंछता जाता है उस मिट्टी को पिला देवें। तथा कुँवारी कन्या के हाथ से कते सूत से गर्भिणी के शिर से पाँव के नाखून तक उसी नाप के तार ले फिर काले छत्तों की जड़ लाकर उसके टुकड़े करें, उस तार में अलग-अलग बांधें, फिर उस जड़ बँधे हुए सूत को स्त्री की कमर में बांध देने से गिरता गर्भ रुक जाता है।

गुल्म—यह रोग स्त्रियों के लिए रक्त गुल्म नाम से व्यक्त किया गया है, इसमें रक्त की गांठ बन जाती है और बहुत ही वेदना होती है। स्त्रियों को जब इसकी वेदना होती है, तो वह घृत कुम्भ जो कि मिट्टी का होता है उसमें अग्नि भरकर सेंकती हैं, जिससे उन्हें चैन पड़ता है। गुल्मकालानल रस का सेवन कराना चाहिए। बच्चा पैदा होने के अनन्तर या गर्भ गिर जाने के पश्चात् अशुद्ध रक्त योनि मार्ग से पूरा नहीं बहता है। कुछ भीतर रह जाता है और दूषित वायु उसे सुखाकर गुल्म (गांठ) बना देती है, इसी का नाम रक्त गुल्म है। परन्तु गुल्म है या गर्भ है इसकी पहिचान करना अति कठिन है, अतः "तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्यम्" यानी १० माह के अनन्तर चिकित्सा प्रारम्भ करें, क्योंकि जो लक्षण गर्भ रहने पर स्त्री को होते हैं वही, लक्षण गुल्मवाली को होते हैं, अतः पहिचानना कठिन होगा। कहीं गर्भ ही खराब न हो जाय या गर्भ ही गर्भ में गुल्म इतना बढ़ जाय कि इतिश्री ही हो जाय। तथापि "रक्त गुल्म पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्" रक्त गुल्म पुराना हो जाने पर ही दुःसाध्य होता है। रोग को पुराना न होने दें। तो मैं बता रहा था कि गर्भ लक्षण गुल्म लक्षणों से लगभग मिलते ही हैं, जैसे—चूचक काले हो जाना, अरुचि, वमन, स्तनों से दूध निकलना भी होता है, तरह-तरह के भोजनों पर मन चलता है, मुख से पानी गिरता है, आलस्य रहता है। अर्थात् गर्भ के सम्पूर्ण चिह्न इस गुल्म में दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु कुछ बातों से निदान हो ही जाता है। जैसे—गर्भ के फड़कने से किसी भी तरह की पीड़ा नहीं होती, पर रक्त गुल्म के समस्त पिण्ड में वेदना होती है। गर्भ में हाथ-पैर आदि कोई एक अंग फड़कत है,

पर रक्त गुल्म में सारा पिण्ड फड़कता है और देर तक फड़कता रहता है। सुश्रुत में लिखा है—न स्पन्दते नोहमेति वृद्धि भवन्ति लिङ्गानि गर्भिणीनाम् ।। न फड़कता ऐसा है और न गर्भ की तरह पेट ही बढ़ता है। इसकी सामान्य चिकित्सा के लिए इस रोग में वायु शमन की औषधियाँ देनी चाहिए, क्योंकि गुल्म रोग की जड़ वायु ही है। पेट साफ रखना चाहिए और तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिए। कुमार्यासव देना चाहिए तथा ढाक के क्षार के पानी के साथ पकाया घी पीने से जिसका नाम पलाश क्षार घृत है, देना चाहिए। अकेली मुण्डी का काढ़ा देने से भी लाभ होता है। पंचानन रस, कांकायन गुटिका भी दी जा सकती है।

गर्भिणी को ज्वर आ जाता है तथा दस्त लग जाते हैं, उसकी चिकित्सा जामुन की छाल का काढ़ा बनाकर, मिश्री मिलाकर, खील डाल पिला देने से अतिसार दूर होता है। लाल चन्दन, सारिवा, लोध, मुनक्का और मिश्री का काढ़ा बनाकर पीने से ज्वर चला जाता है। तथा बच्चा पैदा होने के अनन्तर प्रसूता को ज्वर हो जाया करता है, वह ज्वर वायु अधिक सेवन करने से, अयोग्य आचरणों से, ठंडा जल पीने से जच्चा को जो ज्वर होता है, उसे प्रसूति ज्वर या सूतिका रोग कहते हैं।

अंगमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरु गात्रता।
शोथः शूलाति सारौ च सूतिका रोग लक्षणम् ।।

शरीर टूटना, ज्वर होना, कँपकँपी होना, शरीर भारी होना, सूजन, शूल, अतिसार—ये इसी रोग के लक्षण हैं। इसी में एक वेदना शूल होती है, जिसका नाम "मक्कल शूल" है।

सौभाग्यशुण्ठी पाक, प्रतापलंकेश्वर रस, सूतिकाविनोद रस, दशमूलारिष्ट अथवा क्वाथ आदि पिलाने से रोग दूर होते हैं। इसके साथ-ही-साथ स्त्रियों को प्रसव के बाद भी दूध कम मात्रा में उतरता है, किसी-किसी को तो बिल्कुल भी नहीं उतरता, अतः "अक्षीरा स्त्री पिवेज्जीरं सक्षीरं सा पयस्वनी" बिना दूधवाली स्त्री अगर दूध में और किसी भी प्रकार से जीरा पीवे या खावे, तो तुरन्त हो दूध उतरता है।

—०—

१५. बच्चों को बीमारियाँ और उनको दूर करने के उपाय

बाल रोग कहने का तात्पर्य यह है कि जो-जो रोग मनुष्यों को होते हैं, वे तो होते ही हैं तथा उनसे भिन्न भी कुछ रोग ऐसे हैं, जो बच्चों को ही होते हैं, अतः बच्चों के रोग को बाल रोग कहा गया है। जैसे :—उनके नाम इस प्रकार हैं :—

तालु कण्टक, महापद्मक, कुक्कुणत्वक, तुण्डी, गुदपाक, अहिपूतन, अनगल्ली, पारिगर्भिक, दन्तोद्भेदक—ये रोग बालकों को ही होते हैं तथा ज्वर, खाँसी इत्यादि रोग तो सभी छोटे-बड़ें को भी होते हैं।

गुरु व विषम पदार्थों के सेवन से माता के शरीर में दोष (वातादिक) कुपित हो जाते हैं, जिससे दूध को दूषित कर देते हैं और उसी दूध को बच्चे पीते हैं, अतः रोगी हो जाते हैं। दोष तीन होते हैं—वात, पित्त और कफ। बच्चों को इन्हीं के द्वारा रोग होते हैं।

जैसे—बच्चों का शरीर वात दोष के कारण कृश हो जाता है। स्वर धीमा रहता है, मल-मूत्र और वायु का वेग कम रहता है तथा पित्त दोष से बच्चों को पसीना अधिक आया करता है, शरीर पीला होता है, प्यास लगती रहती है, हर समय दस्त होते रहते हैं, बच्चा ठंडी जगह पसन्द करता है। कफ दोष से बच्चे के मुँह से लार अधिक गिरा करती है, आलस्य व नींद बहुत आती है, वमन करता रहता है। ऊपर जो बच्चों के रोग बताये हैं, उनके लक्षण और चिकित्सा यहाँ बता देना आवश्यक है।

तालु कण्टक :—कफ दोष के कारण बच्चों का तलुआ नीचे को लटक जाता है अतः बच्चा दूध नहीं पी सकता। कदाचित पीता भी है, तो थोड़ा-थोड़ा ही पी पाता है। क्योंकि गले में वेदना होती है, इसमें पहिचान यह है कि बच्चे की गर्दन झुक जाती है और वह वमन करता है। इसमें ज्वर भी रहता है। सिर में गड्ढा भी पड़ जाता है। देहात में इसको "घाँटी" कहते हैं। इसकी भी चिकित्सा में बच्चे के मुँह में दो उँगली डालकर गले से व तालु से जो

कफ लग जाता है उसे निकाल देते हैं और तालु के पास लटकनेवाले काग को उठा देते हैं। हरड़ और शहद मिलाकर लगा देते हैं, तब बच्चे को उसी समय दूध पिला देते हैं और वह स्वस्थ हो जाता है। इसे घर की वृद्धा स्त्रियाँ या मेहतरानियाँ प्रायः करती हैं।

महापद्मक :—त्रिदोष यानी तीनों दोषों के कोप से बालक के मस्तक और मूत्राशय में लाल रंग का प्राणहर विसर्प रोग होता है, जिसको महापद्मक कहते हैं। मस्तक में पैदा हुआ विसर्प कनपटियों में होकर हृदय में जाता है और पुनः गुदा में होकर हृदय में जाता है और फिर गुदा में। उसी प्रकार मूत्राशय में उत्पन्न विसर्प गुदा में जाता है, पुनः हृदय में और फिर मस्तक में जाता है। लोग कहते हैं कि बच्चे को नीले, लाल, कुछ-कुछ काले-काले फफोले उठते हैं, किसी-किसी को पीले, लाल और सफेद भी फफोले उठते हैं। बच्चे को जब चैन नहीं पड़ती है, तो उसे यही रोग समझना चाहिए। इसकी चिकित्सा में सफेद राल को पीसकर सरसों के तेल में डाल पानी डालकर खूब मलें। जब गाढ़ा मरहम तैयार हो जाय, तब हल्दी पिसी डाल तथा घर का धुआँ और मिलाकर मरहम तैयार कर लें, उस मरहम से बच्चे को पोत दें, दिन में चार बार लगावें, ३ दिन में बच्चा ठीक हो जावेगा।

कुक्कुणत्वक :—माता के दूध के दूषित हो जाने के कारण ही बच्चे की आँखों की पलकों में कुकुणत्वक नाम का रोग होता है, जिससे नेत्रों में व्यथा, पीड़ा, खुजली होती है, आँखों से जल स्राव होता है, इसमें पुनर्नवा, लोध, हल्दी, गूदा घीग्वार पीस कर जरा गर्म कर बच्चे की आँखें सेंक देने से उपर्युक्त रोग शान्त होता है। स्मरण रहे छोटा बच्चा हो, तो अधिक गर्म-गर्म न सेंकें। सुहाता-सुहाता ही सेंकें।

तुण्डी :—वात दोष के कारण नाभि फूल जाती है, उसमें वेदना होती है। इसी का नाम तुण्डी रोग है। दशाङ्ग लेप लगाना चाहिए।

गुद पाक :—पित्त दोष से बालक को गुदा पक जाती है, इस पर भी महापद्मक रोगवाला मरहम लगाना चाहिए।

अहिपूतन :—गुदा को अच्छी प्रकार न धोने से अथवा लिङ्गेन्द्रिय को साफ न करने के कारण रक्त और कफ के कोप से खुजली पैदा होती है। खुजलाने से फोड़े और उनसे मवाद बहने लगता है। इसी का नाम अहिपूतन है। इसमें कबीला, मुर्दासंगकी या तेल में मिलाकर लगाने से उक्त रोग दूर होता है।

अनगल्ली :—कफ-वायु के कोप से बच्चों के शरीर में मूंग के समान फुंसियाँ हो जाती हैं, इसके लिये अहिपूतनवाली दवा करें।

पारिगर्भिक :—इस रोग में खाँसी, मन्दाग्नि, वमन, तंद्रा, दुर्बलता, पेट बढ़ना आदि होते हैं; कारण इसका कब्ज है। इसमें अग्नि को दीपन करनेवाली औषधियाँ देना चाहिए तथा घुट्टी देना या हरड़ घिसकर शहद और मां के दूध में ही मिलाकर पिला देनी चाहिए। साथ ही सोंठ, अजवाइन को पीस नमक काला डालकर गर्म करके पानी में मिला अवस्थानुसार पिला देने से भी रोग से शान्ति मिलती है।

अन्तोद्भेदक :—बच्चों के दाँत निकलते समय विशेष कर ज्वर, दस्त होना, खाँसी, वमन, सर्दी, सिर-दर्द, आँख दुखना, फोड़े-फुन्सी आदि रोग हो जाते हैं, इससे बच्चा बड़ा ही कष्ट पाता है। जैसे ही बच्चा दूध पीता है कि उल्टी कर देता है और एक बूंद भी आमाशय नहीं पचा पाता, तब तो बच्चा निहायत कमजोर हो जाता है और बन्दर के बच्चे के मुँह के सदृश मुँह और चूतड़ छुहारे जैसे हो जाते हैं। बच्चों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, तब उसे लोग देहात में 'सूखा रोग' कहते हैं। इस रोग में दन्तोद्भेदगदान्तक रसं, कुमारकल्याण रस देना लाभ-दायक है। बच्चे की गर्दन में कपूर की एक थैली बनाकर लटका देनी चाहिए। तथा मकोय और पानवाले से लगवाया हुआ पान जिसमें सुपारी आदि कुछ न हो, दोनों चीज एक जगह बारीक पीसकर बच्चे की पीठ पर रगड़ें और गर्म-गर्म पानी ऊपर से डालें। उसी समय देखेंगे कि बच्चे की पीठ पर लम्बे-लम्बे सफेद छोटे-छोटे जीव लगे रहते हैं, उन्हें नाखूनों से नोंच-नोंच कर छुड़ाकर फेंक दें, इसी प्रकार ८ दिन करें, बच्चा स्वास्थ्य प्राप्त अवश्य करेगा। इस क्रिया को करने पर मंगल के दिन हनुमानजी का भोग लड्डूओं का लगाकर प्रसाद वितरण करना चाहिए।

ज्वर, खाँसी, दस्त, वमन आदि में बच्चों को अधिक तीक्ष्ण औषधियाँ नहीं देनी चाहिए। शृंग्यादि चूर्ण, चतुर्भद्रिका चूर्ण देना चाहिए। इनके सेवन से ही अनेक रोगों का नाश हो जाता है। यदि दस्त बहुत ज़ोरों से हो रहे हैं और अनेक औषधियों से भी बन्द न हुए हों, तो प्याज के रस में जरा-सी अफीम घोलकर देने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

हिक्का :—बच्चों को हिचकी स्वाभाविक भी आती रहती है, उनके आने से बच्चों का पेट (उदर) बढ़ता है और हाजमा शक्ति बढ़ती है। इसकी चिकित्सा

नहीं करनी चाहिए। इसमें मयूरपुंख भस्म शहद और मां के दूध के साथ देने से हिक्का के वमन दूर होते हैं।

न्यूमोनिया (पसली चलना) :—इसमें ज्वर, खाँसी होती है। पसली चलती है और खाँसी बहुत आती है। इसमें अभ्रक भस्म, शृंगमूल, गोदन्ती, रसपीपरी, शहद और माँ के दूध के साथ देना लाभदायक है और तारपीन का तेल, मोम देशी समीमस्तंगी असली, कपूर, महुआ तेल, तिल्ली तेल, बाबूना तेल पका लें। नीचे उतार कर स्प्रिट डाल छाती एवं पसली पर मलने से और हल्की सेंक करने से पसली दर्द तथा पसली चलना बन्द हो जाता है।

सिर में जूँ :—बहुधा देखा गया है कि कन्याओं के सिर में जूँ पड़ जाया करतीं है, जिनसे वे बड़ी परेशान रहती हैं और प्रत्येक समय सिर को खुजलाती रहती हैं। इसमें पारा लेकर सर में मलें तथा निम्ब की गिटी पीसकर पानी मिला थोड़ी देर तक सिर में मलना और लगभग आधा घंटा सिर नहीं धोना, बाद में सिर धोकर साफ करें।

होंठ फटने पर :—नमक, तेल, मोम मिला गर्म करके होंठों पर और नाभि में मलना। ये खुश्की के कारण तथा होंठों पर लव लगने से फटते हैं।

मिट्टी खाना :—प्रायः हम देखते हैं कि गर्भावस्था में माता-बहिनें मिट्टी खाती हैं और बच्चे को जन्म देने पर, जब वही इच्छा बच्चे को होती है, तब लुक-छिप कर भी बच्चे मिट्टी खाते रहते हैं, जिनसे पेट बढ़ जाता है और शरीर कृश तथा पीला हो जाता है। इसमें केला पका हुआ शहद में मिलाकर खिलायें।

आँखों के रोग :—गर्मी, सर्दी व कब्ज से भी बच्चों की आँखें आ जाती हैं। गिरी बादाम १ रत्ती, फिटकरी, रसौत २ रत्ती, बताशा नग १—सबको घिस जरा-सा घी डाल गर्म कर लेप करने से आँखें ठीक हो जाती हैं।

कीड़े :—यदि कब्ज रहने से बच्चों के कीड़े पड़ गये हों, तो कबीला, पलास बीज, कुकरौंदा, कपूर डाल औंटा काढ़ा बनाकर बच्चे को पिला दें, अवश्य ही कीड़े मर जावेंगे।

तुतलाना :—यदि बालक तुतलाता हो, तो काली मिर्च घी में डाल जीभ पर रोज मलें अथवा ब्राह्मी की पत्ती जीभ पर मलें और पिलायें भी।

जीवेम :

फलक मुँह में :—कब्ज से तथा गर्म पदार्थों के सेवन से या तेज चीजों के खाने से मुलायम गले में घाव पैदा हो जाते हैं, तब शहद में पानी मिलाकर कुल्ला करें और शहद में थोड़ा सुहागा का फूला मिलाकर लगायें।

इसके साथ-साथ उन बच्चों का भी यहाँ जिक्र कर देना चाहते हैं, जिनसे समाज और देश की उन्नति होती है। गांधी, हिटलर, जवाहर और स्टालिन—ये भी किसी समय बालक रह चुके होंगे। १२ से १६ वर्ष की अवस्था किशोरावस्था होती है, इसी समय बच्चों के जीवन बनते और बिगड़ते हैं। शरीर की गठन सुडौल या बेडौल इसी समय में होती है। अच्छे और बुरे संस्कार इसी समय में पड़ते हैं। इसी समय वीर्य-रक्षा द्वारा शरीर और मन को बलवान और पवित्र या वीर्यपात के द्वारा रोगी तथा कायर बनाया जाता है। इसी समय जीवन भर के लिये अच्छा या बुरा रास्ता चुना जाता है। प्राचीन भारत ने इन्हीं किशोरों के बल पर ही सारे संसार के गुरु का पद प्राप्त किया था। भीम, अर्जुन, शंकराचार्य, चाणक्य और अशोक ऐसे ही किशोर थे, जिनके नाम से दुनिया चौंकती थी। सात-सात महारथियों को नाकों चने चबवानेवाला वीर अभिमन्यु किशोर ही था। अतः वीर्य-रक्षा भी एक कर्तव्य है, लगभग सभी रोगों की अनुपम महौषधि है। जिस किशोर के पास वीर्य धन है, वह सदा-सर्वदा सफल होता है। विजयलक्ष्मी उसका आलिङ्गन करती है।

—०—

१६. घरेलू इलाज के सरल साधन

चरक में कहा गया है कि "शरीर व्याधि मन्दिरम्" देखा जाय तो शरीर ही व्याधियों का घर है। बहुत कम इस प्रकार के मनुष्य होंगे, जो अपने को पूर्ण स्वस्थ समझते हैं। चिन्ता भी एक बहुत बड़ी बीमारी है, यह शरीर को भीतर ही भीतर जलाकर राख कर देती है। चिन्ता का सम्बन्ध मन से घनिष्ट है। आज के युग में प्राय: परिस्थिति इस प्रकार की हो गई है कि प्रत्येक व्यक्ति इस अग्नि में जलता रहता है। इसका इलाज सन्तोष से होता है; सो यह किस प्रकार पैदा किया जाय, इसका कोई स्वप्न में भी ख्याल नहीं रखता है। सारे दिन मानव आज की दुनिया के चकाचौंध में अर्थ के पीछे दौड़ता रहता है और रुपया ही सब कुछ समझता है। यदि अर्थ खूब उपार्जन हो गया, तो और अधिक के लिये चिन्ता और यदि नहीं प्राप्त हुआ तो जितनी जरूरत है उसके लिये चिन्ता करता है कि कैसे उपार्जन किया जाय। यही चक्र आज की दुनिया में तीव्र रूप से चल रहा है। इसी का कारण है कि आप जिसे देखें, वही बेचैन दिखाई देता है। "ब्लड प्रेसर, हार्टफेल" इसी की देन है। यह बीमारी रात-दिन बढ़ती चली जा रही है। अब हमारे सामने प्रश्न आता है कि दु:साध्य बीमारी यानी चिन्ता का इलाज किस प्रकार किया जाय, सो हम आपको बता रहे हैं।

चिन्ता का इलाज :

(क) मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है अपनी शक्ति के अनुसार खूब कर्म करना, फल क्या प्राप्त होगा इस पर उसे सोचने का अधिकार नहीं है, क्योंकि यदि वह इस चक्कर में पड़ जायगा, तो जिस कार्य को वह कर रहा है, उधर से मन और बुद्धि फल-निर्णय में लग जायेंगे और कार्य ठीक से नहीं होगा। आप सोचिये कि जब कार्य ही ठीक से नहीं होगा, तो हमें यथेष्ट उसका फल कहाँ से प्राप्त होगा। कहा भी गया है कि "कर्म मात्र का है अधिकारी, फल का तुझे नहीं अधिकार" सन्त तुलसीदास ने भी कहा है कि "कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करिय सो तस फल चाखा।"

इन उदाहरणों को ध्यान में रखते हुए यही निर्णय निकलता है कि अच्छी बुद्धि से जो भी कार्य किया जायगा, उसका भगवत्कृपा से अच्छा ही फल प्राप्त होगा। इसी प्रकार का गीता में भी प्रसंग आया है। निर्णय निकला कि चिन्ता न करके अपने कर्त्तव्य अनुसार कर्म करे, चिन्ता में न पड़े। देखा भी गया है कि जो चिन्ता को छोड़कर ईश्वरीय नियमों का पालन कर कर्म में संलग्न रहता है, वह इस संसार में हमेशा सुखी रहता है।

(ख) सुबह से शाम तक कर्म करने पर जो प्राप्त हो, उसी पर सन्तोष रख कल की चिन्ता न करे।

(ग) अपनी दिनचर्या में हमेशा इस बात का ख्याल रखे कि ईश्वर अपने-अपने कर्मों के अनुसार सबको यथेष्ट फल देता है।

(घ) जो भी कार्य करे उसे समय से बन्द कर दे और समय से प्रारम्भ करे, बन्द किये गये कार्य का बाद में चिन्तन न करे।

(ङ) परिवार के सभी सदस्यों के साथ बैठकर चौबीस घण्टे में एक बार भगवत्-स्मरण करे और हृदय तथा मन को प्रसन्न रखने के लिये अन्य विनोद भी करे।

यहाँ पर हम आपको चिकित्सा के घरेलू सरल साधन बताने जा रहे हैं, इसलिये इतना ही बतायेंगे, क्योंकि यह प्रसंग आगे बताया जा चुका है। अब शरीर में होनेवाली कुछ बीमारियों के घरेलू सरल साधन बता रहे हैं।

(क) सर्दी-जुकाम और चिकित्सा :

यह बीमारी भी एक बड़ी कष्टदायक बीमारी है। यह थोड़ी-सी लापरवाही से ही अपना भयंकर रूप धारण कर लेती है। कारण—प्रकृति के विरुद्ध आहार-विहार करने से इसकी उत्पत्ति होती है। कई बार देखा गया है कि आदमी दौड़-कर आया है, उसकी साँस की गति बढ़ रही है, उस वक्त यदि वह पानी पी लेता है तो उसे तुरन्त सर्दी-जुकाम हो जाता है। उसका कारण है कि उसका शरीर गरम हो रहा है। उस समय ठण्डा जल उसके शरीर में जायगा तो सर्दी और गर्मी मिलकर एक नया उपद्रव—जुकाम खड़ा कर देंगे। ठण्डे पर गरम और गरम पर ठण्डा नहीं खाना चाहिए, क्योंकि यह एक दूसरे के विपरीत है और जुकाम का मुख्य कारण है। कभी-कभी ऋतु बदलने पर भी सर्दी-जुकाम हो जाता है।

उपाय—जब शरीर म मालूम पड़े कि जुकाम हो गया है, तो तुरन्त उसी समय से भोजन बन्द कर दें। दिन में तीन-चार बार थोड़ा-थोड़ा करके गरम जल,

गरम नींबू का जल या मिश्री मिला हुआ जल सेवन करे, इससे जुकाम पककर २-३ दिन में निकल कर साफ हो जायगा। कई बार भूखे नहीं रहा जाता है, उस समय ऊपर वाला तो उपचार करे ही, लेकिन साथ-साथ साग-सब्जी के साथ बिना चुपड़ा फुलका सेवन करे। वैसे भी एक कहावत है कि जुकाम की तीन दवाएँ हैं— रूखा, सूखा और भूखा। कहने का मतलब यह है कि यदि आदमी भूखा रहे तो सबसे श्रेष्ठ है और उससे भूखा नहीं रहा जाय तो रूखा खाय, यदि यह कार्य भी उसे कठिन मालूम पड़े, तो जुकाम के समय में सूखा तो अवश्य रहे। यदि इन तीनों में से एक या दो कार्यों को भी जो ठीक से अपना लेता है वह जुकाम के भयंकर शिकार में नहीं आता है। बहुत से आदमी कहते रहते हैं कि हमें तो चार साल पहले थोड़ा-सा जुकाम हुआ था। उस वक्त हमने कुछ देख-रेख नहीं की, तब से हमारी तो तासीर ही बदल गई। जरा-सी गलती होने पर बीमार हो जाते हैं। सर्दी-जुकाम में कभी भी लापरवाही नहीं करे। पूरा ख्याल रखे और ऊपर बताये अनुसार उपचार करने से वह जुकाम से मुक्ति अवश्य पा जायेगा।

(ख) दु:साध्य जुकाम-सर्दी की चिकित्सा :

(१) काली मिर्च नग ५, तुलसी पत्ता नग ५, लवंग नग २—इन सबको २ छटांक पानी में उबाले और छटांक भर रहने पर मिश्री देकर पीलें। ३ दिन में जुकाम बिलकुल ठीक हो जायगा।

(२) १ छुहारे को गरम दूध में डालकर उबालें और बाद में उसे चबाकर दूध पीलें। परिचर्या से चलें, जुकाम बिलकुल ठीक हो जायगा। यह योग मस्तिष्क दर्द में भी कार्य करता है।

(३) यदि गले में दर्द हो तो फिटकिरी और सेंधा नमक के कुल्ले कर और ऊपर अदरख को अग्नि में सेंककर सेंधा नमक के साथ चबाइये। सर्दी-जुकाम ठीक हो जायगा।

(४) गरम दूध में केशर डालकर पीने से भी जुकाम ठीक होता है। जुकाम के समय में कोई भी गरम दवाई नहीं सेवन करें, क्योंकि जुकाम यदि सूख गया तो श्वास की बीमारी होने का डर रहता है। हमारा निजी अनुभव है कि बिना औषधि-सेवन के केवल गरम-गरम जल का ४ दिन तक थोड़ा-थोड़ा प्रयोग करने से सर्दी-जुकाम हमेशा के लिये ठीक हो जाता है।

(ख) दाँतों की बीमारियाँ और पायरिया :

मुँह एक स्थान ऐसा है, जिससे सारे शरीर का पोषण होता है। मुँह में भी दाँतों का जो स्थान है, वह किसी से छिपा नहीं है। सो यदि दाँतों में ही खराबी आ गई, तो शरीर कभी ठीक ही नहीं रह सकता। यदि दाँतों की खराबी होगी, "पायरिया" होगी, तो वह भोजन के साथ पेट में जायगी। जब वह पेट में जायगी तब वहाँ विषाक्त विष फैलायेगी। वह विषाक्त विष सारे शरीर में नई-नई बीमारियाँ खड़ी करेगा।

पायरिया—यह दाँतों की भयंकर बीमारी है। दाँतों से खून गिरता है और मसूड़े फूले रहते हैं, खाना अच्छा नहीं लगता है। यदि किसी प्रकार खा भी लिया, तो विष पेट में जाकर फैलता है।

उपाय—(१) इस बीमारीवाले को दोनों समय फिटकिरी और सेंधा नमक तथा लवंग डालकर कुल्ला करना चाहिए। नीम या बबूल की दातौन चबाना चाहिए। चूल्हे की मिट्टी में सेंधा नमक मिला सरसों का तैल देकर मंजन के रूप में करना चाहिए। यह पायरिया का उत्तम योग है।

(२) प्रातः उठकर बबूल की दातौन चबाकर ऊपर से "डिटोल" का कुल्ला दिन में दो बार करें। इससे भी पायरिया में बहुत लाभ होता है तथा दाँत मज-बूत होते हैं।

(३) सेंधा नमक महीन पीसकर रख दें और प्रातः और सन्ध्या समय सरसों का तैल मिलाकर उँगली से दाँतों पर १५ मिनट तक मलें, इससे काफी फायदा होता है।

(४) मौलसिरी की केवल छाल महीन पिसाकर रखें और दिन में २-३ बार मंजन की तरह से उँगली से दाँतों पर मसलें, बहुत ही चमत्कारिक लाभ होता है।

(५) **पायरियानाशक परीक्षित योग**—लवंग तोला १, वायविडंग तोला १, जीरा तोला १, मौलसिरी की छाल तोला १, सेंधा नमक तोला १—इन सबको महीन पीसकर कपड़छान करके रख लें, और प्रातः और सायं मधु मिलाकर पेष्ट की तरह से उँगली से दिन में २-३ बार मंजन के रूप में इस्तेमाल करें, पायरिया अवश्य ठीक हो जायगा।

नोट—पायरियावाले रोगी को पेट का पूरा ख्याल रखना चाहिए और समय-समय से हल्का जुलाब लेकर पेट साफ कर लें। भोजन के बाद अच्छी प्रकार

कुल्ला करें, जिससे पेट में मुंह में रहा हुआ अन्न दूषित होकर नहीं जाये। जो रोगी इस प्रकार की दिनचर्या निभाकर करता है उसे पायरिया और पेट की शिकायत ही नहीं होती है। यदि हो भी गई, तो वहुत ही शीघ्र ठीक हो जाती है।

(ग) श्वास और खाँसी :

(अ) यह बीमारी भी शरीर के लिये वहुत ही घातक है। वैसे तो एक छोटी-सी चोट भी शरीर में कितनी तकलीफ पहुँचाती है, यह तो सभी जानते हैं, जिन्हें यदि थोड़ा-वहुत भी कभी अस्वस्थ रहना पड़ा होगा। श्वास-खाँसी वाले रोगी के लिए दिन में चैन और रात में नींद नहीं आती है और परेशानी-ही-परेशानी सामने रहती है। यह वीमारी फेफड़ों से सम्वन्धित है। शुरूआत इसकी जुकाम से ही होती है। यदि जुकाम पुराना हो गया, या सूख गया तो वह श्वास-खाँसी का रूप धारण कर लेता है। इसीलिये शास्त्रकारों और आयुर्वेद मनीषियों ने कहा है कि इस रोग की चिकित्सा तो रोग होने के साथ-ही-साथ कर देनी चाहिए। श्वास और खाँसी के वारे में यहाँ विशेष वताने से अच्छा होगा कि उसकी कुछ घरेलू चिकित्सा वता दी जाय।

खाँसी की चिकित्सा :

(१) यदि नवीन खाँसी हो तो छोटी पीपल लेकर एक छटांक वकरी के दूध में भिगों दें, २४ घण्टे भींगने पर उस वकरी के दूध को निकाल दें और पीपल साफ करके सुखाकर महीन पाउडर कर एक शीशी में भर लें। एक आना भर सुबह और एक आना भर शाम को मधु से या मिश्री की चाशनी से सेवन करने से भयंकर से भयंकर खाँसी ठीक हो जाती है। यह योग भी आजमाया हुआ है।

(२) केले के पत्ते आधा सेर लेकर महीन टुकड़े कर एक हन्डी में भर दें, वाद में उस हन्डी के मुंह की कपड़ मिट्टी कर दें और धूप में सुखाकर उसे अग्नि में फूंक दें। जब अग्नि शीतल हो जाय उसके वाद उसे निकाल कर पीस कर एक शीशी में भर लें। यह काले रंग की केला भस्म वन जायगी और प्रत्येक खाँसी में काम रोगी, वच्चों की सूखी खाँसी (कुक्कुर खाँसी) में अधिक फायदेमन्द है।

(३) तेजपात १ तोला और इलायची छोटी २॥ तोला, पीपल ५ तोला, वंशलोचन १० तोला, मिश्री २० तोला—इन सवको महीन पीसकर रख यह योग श्वास, खाँसी, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि इत्यादि में वहुत ही अच्छा कार्य करता है। इसका नाम "सितोपलादि चर्ण" भी है।"

(४) अदरख का रस आठ आना भर, पान का रस चार आना भर प्रातः और सायं मधु मिलाकर सेवन करने से काफी आराम मिलकर खाँसी ठीक हो जाती है।

नोट—यदि रोगी की पित्त की प्रकृति हो और बताये हुए योगों में कोई गरम मालूम पड़े, उस समय उसे मिश्री का गरम पानी, ग्लूकोज का गरम पानी थोड़ा-थोड़ा करके अवश्य दिन में २-३ बार लेना चाहिए। सूखी खाँसी में मिश्री का टुकड़ा और मुलेठी मुँह में रखने से भी काफी फायदा होता है। हरड़ का छिलका तथा बहेड़ा का छिलका घी में सेंककर मुंह में रखने से खाँसी में काफी फायदा होता है।

(ब) श्वास-रोग की चिकित्सा :—खाँसी और श्वास वैसे तो मिले हुए रोग हैं, फिर भी पुराना होने पर खून में एक श्वास का कीड़ा पैदा हो जाता है, जिसकी मात्रा अधिक होने से श्वासवाले रोगी को तकलीफ होती है और कम मात्रा होने से आराम मिलता है। कई व्यक्ति कहावत के रूप में कहते हैं कि श्वास की बीमारी तो जीवन के साथ ही जाती है। इस प्रकार की बात नहीं है। रोगी यदि पूर्व अवस्था में ही दृढ़ संकल्प कर ले कि हमें तो इस बीमारी को खोना है, तो अवश्य वह बीमारी नष्ट हो जाती है। वैद्य और डाक्टर कितनी भी औषध या उपाय बतायें, जबतक रोगी स्वयं कटिबद्ध नहीं होगा, तबतक बीमारी नहीं जायगी।

(१) सबसे प्रथम तो इस बीमारीवाले को खुली हवा चाहिए, जहाँ से इसके फेफड़ों को ताकत मिले। इससे भी बहुत सहारा मिलता है।

(२) दशमूल के काढ़े में मुलेठी देकर उसकी भाफ लेने से फेफड़े मजबूत होते हैं तथा उसी काढ़े को दिन में २ बार लेने से ४० दिन तक नवीन श्वास हमेशा के लिये समाप्त हो जाती है।

(३) नागरमोथा, सोंठ, बड़ी हर्रे—इन तीनों को महीन कूट-पीसकर चूर्ण समभाग लेकर कर लें। चूर्ण की मात्रा से दुगुने पुराने गुड़ में मिलाकर झरबेर के बराबर गोली बना लें। इसमें से दिन में ३-४ गोली गरम दूध से या वैसे ही मुंह में रखकर चूसना चाहिए, यह बहुत ही फायदेमन्द योग है। श्वास और खाँसी दोनों में ही चमत्कारिक लाभ करता है।

(४) १० तोला बकरी का दूध और १० तोला बहेड़े की छाल के चूर्ण को मिश्री मिलाकर पकावें। जब चटनी जैसी हो जाय तब नीचे उतार कर शीशी में भर लें और दिन में ३-४ बार ६ माशा करके खायें। ऊपर से बकरी का दूध पीपल डाला हुआ पियें, तो श्वास रोग में बहुत आराम मिलता है।

(५) रासन, जैत के बीज, खरेटी, पद्‌माख, देवदारु, त्रिफला, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग—इनको सम भाग लें चूर्ण बना ले और प्रातः और सायं १ तोला घी और डेढ़ तोला मधु या मिश्री की चाशनी में ३ माशा चूर्ण मिलाकर सेवन कर ऊपर से दूध पीवें। यह योग श्वास रोग में बहुत ही चमत्कारिक लाभ करता है।

श्वास की परिचर्या पथ्य—श्वास-खाँसीवाले को तैल, मिर्च, खट्टा इत्यादि हानिकारक चीजों से बचना चाहिए। दिन में गरम किया हुआ जल तथा मिश्री का जल सेवन करना चाहिए। भोजन में हल्का भोजन, हरी सब्जियां, दूध इत्यादि की मात्रा अधिक सेवन करें। श्वासवाले को अधिक बात करना भी ठीक नहीं है।

(घ) आँखों की बीमारियों के इलाज :

कहावत है कि "आँख है तो जहान है" वास्तव में यह बात सत्य है। यदि आँख खराब हो जाती है, तो उससे जीवन का सुनहला आनन्द चला जाता है। आँख ही अपने-पराये, भले-बुरे का निर्णय करती है। आँख के बारे में विशेष न बता कर उसकी सुरक्षा के उपाय बता रहे हैं।

(१) प्रातः उठकर ठंडे पानी से आँख की खूब धुलाई करें, इससे २४ घंटे की गर्मी आँख से निकल जाती है।

(२) त्रिफला या गुलाब जल के पानी से आँख की सुबह धुलाई कर और आँख में गुलाब जल एक-दो बार दिन में डालें। आँख की बीमारियों में यह योग बहुत काम करता है।

(३) सफेद फिटकिरी को बकरी के दूध में शुद्ध कर दें, तवे पर सेंककर फूला बनावें और ४० दिन तक गुलाब जल में डालकर खरल में घुटाई कर इससे जो सफेद पाउडर तैयार होगा, उसे सलाई से आँख में दिन में २-३ वार डालें, मोतिया बिन्द तक को काट देता है और आँख की सभी बीमारियों में काम करता है।

(४) शुद्ध मधु भी आँख में लगाने से अच्छा लाभ करता है। आँख में होनेवाली लाली को बहुत ही जल्दी ठीक करता है।

(५) यदि आँख विशेष लाल हो गई हो, उस वक्त कान की बगल में जो कनपटी पर गड्ढे हैं, वहाँ चूने का लेप कर बहुत ही लाभ होता है।

(६) छोटे बच्चों की यदि आँख दुखती हो, तो उस वक्त माँ के दूध में रुई के फाहे भरकर आँख को बांधें, बहुत लाभ होता है।

(७) पुनर्नवा की जड़ को साफ करके महीन कूटकर रत्नजोति (एक जड़ी होती है) के रस में घुटाई करके रख लें। दिन में २-३ बार सलाई से डालें, ऐसा करने से चश्मा तक छूट जाता है। आँख की कमजोरी, पानी आना इत्यादि में बहुत लाभकारी है।

(८) काजल भी अच्छा होने पर आँख में रोज डालने से आँख का दूषित पानी निकलकर आँख साफ हो जाती है।

(९) अच्छे घी का पैर के तलुओं पर मालिश करने से तथा प्रातः हरी घास पर १ घंटा नंगे पैर घूमने से आँख की समस्त बीमारियां नष्ट हो जाती है।

(ङ) टॉन्सिल और स्वर भंग :

यह बीमारी वैसे तो सर्दी-जुकाम से ही तैयार होती है, लेकिन है गले की बीमारी। टॉन्सिल होने से या गला बैठने से आदमी की तबियत सारे दिन बेचैन-सी रहती है। यह बीमारी घरेलू चिकित्सा और उपचार से भी नष्ट हो जाती है।

चिकित्सा—(१) हल्दी और नमक डालकर दिन में ४-४ बार कुल्ला करने से गले की बीमारियों में बहुत आराम मिलता है।

(२) सरसों के तेल को गरम करके पान के पत्तों पर चुपड़ कर गले में रात को बांधें और अग्नि से धीरे-धीरे सेंक करें। इस प्रयोग से स्वर भंग और टॉन्सिल दोनों में बहुत लाभ होता है। कुछ समय तक इस उपाय को करने से यह दोनों बीमारियाँ ही समाप्त हो जाती हैं।

(३) गरम पानी में डिटोल या फिटकिरी डालकर कुल्ला करने से भी बहुत आराम मिलता है।

(४) भुनी फिटकिरी एक आना भर बराबर चीनी या मिश्री मिलाकर गरम पानी से दिन में २-३ बार दूध से या गरम जल से सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

(५) टॉन्सिल और स्वर भंग वाले रोगी को बर्फ, खट्टी, मीठी, तैल, मिर्चे इत्यादि चीजें बहुत कम सेवन करनी चाहिए। इन चीजों से अलग रहकर यदि कोई भी साधारण-सा ही प्रयोग गरम जल का करता है, तो बहुत लाभ होता है।

(६) लवंग १ तोला, मिश्री २ तोला, मुलेठी १ तोला—इन सबको महीन पीस मधु में मिलाकर मटर के बराबर गोली बना मुंह में रख चूसने से भी गले की बीमरियाँ हमेशा के लिये ठीक हो जाती हैं।

(च) दाद, खाज, बीची और (एक्जिमा) :

यह बीमारी चमड़े से सम्बन्ध रखती है, लेकिन चमड़े का सम्बन्ध रक्त से है और रक्त का सम्बन्ध यकृत् से है, इससे निर्णय निकला कि पेट की स्वच्छता और सफाई तो इस बीमारी में भी आवश्यक है। यदि पेट की संचालन-क्रिया ठीक होगी, तो रक्त संशोधन होकर चर्म रोग जल्दी ठीक हो जायेंगे।

(१) नारियल के तैल में कपूर और बोरिक एसिड पाउडर डालकर सारे शरीर पर मलने से दाद, खाज, खुजली शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

(२) सरसों के तैल में नीबू डालकर खूब फेटकर मालिश करने से खाज-खुजली २-४ दिन में ही ठीक हो जाती है।

(३) खुजली तथा रक्त दोष वाले को मट्ठे में बेसन (चने का आटा) मिलाकर स्नान करने के पहले आधा घंटा मलना चाहिए। इस प्रकार से २-४ दिन करने से खुजली, दाद हमेशा के लिये समाप्त हो जायेंगे।

एक्जिमा—यह रोग है तो दाद और खाज से सम्बन्धित, लेकिन इसमें लगाने की औषधि के साथ-साथ कुछ खाने की दवा भी सेवन करनी चाहिए।

(१) नीम की हरी पत्ती १ तोला, बेल की हरी पत्ती १ तोला—दोनों को महीन पीसकर चार आना भर करके गोलियां बना लें। दिन में तीन बार जल से या दूध से सेवन कर नमक-खटाई कुछ समय के लिये बन्द कर दें।

(२) दो छटांक गाय का सौ बार का धुला हुआ मक्खन, फूल सुहागा २ तोला मिलाकर मरहम बनाकर रख लें। बीची (एक्जिमा) में बहुत ही अच्छा यह योग कार्य करता है।

(३) केवल बड़ी हरड़ को गुलाब जल में घिसकर लगाने से भी बीची (एक्जिमा) निर्मूल हो जाता है।

(छ) यकृत् और प्लीहा :

शरीर का बहुत कुछ भार इन पर निर्भर करता है। यदि इनकी संचालन क्रिया में थोड़ा भी दोष आ गया तो समझिये कि कोई-न-कोई नवीन व्याधि शरीर में खड़ी हो गई। इसलिये इन्हें अच्छे स्वास्थ्य के लिये ठीक रखना नितान्त आवश्यक है।

(१) हल्का व्यायाम करना, जिससे इनको शक्ति मिले और पाचन-क्रिया ठीक रहे।

(२) सेंधा नमक १ तोला, सौंफ १ तोला, कालमेघ १ तोला, वाइवडंग १ तोला, पीपल छोटी १ तोला—इन सबको महीन पीसकर चूर्ण करके रख लें और यदि यकृत्-प्लीहा में दोष हो तो रात्रि समय जल से लेकर सो जायें। चन्द दिनों में ही काफी लाभ देखा गया है।

(३) भुना जीरा २॥ तोला, सोंठ २॥ तोला, पीपल २॥ तोला, सेंधा नमक २॥ तोला, काली मिर्च २॥ तोला, इन्हें महीन पीसकर रख लें। यकृत्-प्लीहा में दोष होने पर थोड़ा-थोड़ा भोजन के बाद नीबू पानी में देकर सेवन करें।

(४) भोजन के साथ अदरख में सेंधा नमक और नीबू निचोड़ कर खाने से भी पाचक रस ठीक बनता है और यकृत्-प्लीहा को शक्ति मिलती है।

(५) प्रातः उठकर खुली हवा में दौड़ने से शरीर को ताकत मिलती है और पेट की संचालन-क्रिया ठीक होती है।

(६) ग्वारपाठा का रस एक पाव, नींबू का रस एक पाव, मूली का रस एक पाव, अनार का रस एक पाव, अदरख का रस एक पाव, सेंधा नमक ४ तोला, हींग १ तोला, पिपरमेन्ट १। तोला, काला नमक २ तोला—सबको अलग-अलग ठीक कर एक कांच के पात्र में भरकर रख दें। १५ दिन तक थोड़ी-थोड़ी धूप देते रहें। यह रस यकृत् और प्लीहा को चमत्कारिक ताकत प्रदान करता है। भोजन के बाद १ तोला से २ तोला तक पानी मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(७) मट्ठे में सेंधा नमक, जीरा, काली मिर्च, सोंठ, चित्रक की छाल को समभाग चूर्ण मिलाकर पीने से यकृत् और प्लीहा सबल होते हैं।

(ज) मधुमेह और प्रमेह :

इन बीमारियों के बारे में तो प्रायः सभी जानते हैं कि ये शरीर के लिए घातक बीमारियाँ हैं। आज तो "मधुमेह" का बहुत अधिक बोलबाला है। हमारे अध्ययन से जहाँ तक आया, वहाँ तक देखा कि प्रमेह और मधुमेहवाला रोगी यदि स्वयं पर थोड़ा भी कन्ट्रोल करे, तो बहुत लाभ होता है। ये दोनों ही बीमारियाँ धातु (शुक्र) से सम्बन्ध रखती हैं, जबकि शुक्र ही शरीर में सर्व शक्तिमान है। इनकी चिकित्सा में थोड़ी भी लापरवाही रोग का कारण बन जाती है। इन दोनों ही बीमारीवालों को आठ दिन में एक बार हल्का जुलाब लेना चाहिए, जिससे पेट साफ होकर पुराने दोष निकल जायें।

(१) मधुमेह और प्रमेहवाले रोगी को प्रातः खुली हवा में पैदल अवश्य चलना चाहिए। (२) मीठी, गरिष्ठ चीज तथा कन्दयुक्त चीजों से मधुमेहवाले को

बचना चाहिए। जो रोगी इनपर ध्यान नहीं देता, वह कभी भी ठीक नहीं होता है। जो थोड़ा भी ध्यान देता है, वह थोड़ी ही हवा से पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

(२) बबूल की छाल २।। तोला, सेंधा नमक २।। तोला, गुड़मार की पत्ती २।। तोला, जामुन की गुठली २।। तोला——इन सबको महीन पीस चूर्ण कर रख लें। भोजन के बाद चार आना भर लेने से मधुमेह में चमत्कारिक लाभ होता है।

(३) जौ का आटा आधा सेर, चने का आटा एक पाव, गेहूँ का आटा एक पाव——इन सबको मिला अजवाइन, सोंठ, जीरा, नमक मिलाकर मट्ठे के साथ रोटी खाने से मधुमेह में बहुत लाभ पहुँचता है।

प्रमेहनाशक नुस्खा—(१) बिधारा २।। तोला, गोखरू २।। तोला, सिंघाड़ा २।। तोला, मिश्री २।। तोला——इन सबको महीन कूटकर दिन में चार आने भर ३ बार लेने से प्रमेह को नष्ट करता है।

(२) दूध में छुहाड़ा, अंजीर डालकर पीने से प्रमेह नष्ट हो जाता है।

(३) कच्ची हल्दी के रस में मधु मिलाकर सेवन करने से मधुमेह नष्ट होता है।

नोट—मधुमेह और प्रमेह की चिकित्सा में पूर्ण संयम से रहना चाहिए।

(झ) केशों का झड़ना और न बढ़ना :

केश भी सघन और लम्बे सुन्दरता के प्रतीक हैं। खासतौर पर स्त्रियों के लिये तो बालों का सघन और लम्बा होना बहुत ही आवश्यक है। लेकिन देखा जाता है कि बिना समय के सफेद हो जाना, झरना, न बढ़ना इत्यादि रोग केशों में शुरू हो जाते हैं। हमारे आयुर्वेद में भी इस प्रकार का जिक्र आया है कि पेट खराब होने से ही सारी बीमारी उत्पन्न होती है। चरक में कहा गया है—"सर्वेषां मेव रोगाणां निदानं कुपिते मलः" यानी सब रोगों की उत्पत्ति ही मल कुपित होने से होती है। इन सब बातों से परिपुष्टि हो जाती है कि बालों को ठीक रखने के पहले पेट (उदर) की संचालन-क्रिया का ठीक होना नितान्त आवश्यक है।

असमय में सफेद होना—प्रतिश्याय कई बार बालों के ऊपर उतर जाता है और बालों को सफेद कर देता है। प्रायः "नजला" के नाम से लोग इसे जानते हैं। वैसे भी कई बीमारियों के बाद भी बाल सफेद हो जाते हैं, जिन बीमारियों से पित्त की अधिकता बढ़ती है।

बालों का झड़ना—मोतीझरा, चेचक, लम्बी अन्य बीमारी में आपने देखा होगा कि सिर के बाल बिलकुल झड़ जाते हैं और मस्तिष्क गन्दा हो जाता है, लेकिन वही बाल पुनः धीरे-धीरे आ जाते हैं। जब खुश्की अधिक होती है, तब बालों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं और शरीर की संचालन-क्रिया जब ठीक रहती है, उस समय बाल भी अच्छे सघन होते हैं।

उपाय—हर प्रकार के तैल प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। कई व्यक्ति सुगंध की लालच में तैल बहदलते रहते हैं, नतीजा यह होता है कि उनके बाल या तो झड़ने लगते हैं या सफेद हो जाते हैं। तैल एक ही प्रकार का कामों में लाना चाहिए, जो मस्तिष्क को माफिक आये वही। कोई सरसों का तैल, कोई तिल्ली का तैल, कोई नारियल तैल काम में लाते हैं। उनसे ही उनके बाल स्वस्थ और मजबूत रहते हैं। हफ्ते में एक बार बेसन (चने का आटा) और दही, आँवलों के चूर्ण से सिर की धुलाई करना चाहिए। ऐसा करने से केश अच्छे रहते हैं।

तैल का नुस्खा—तिल्ली तैल ४ सेर, सतावरी रस ४ सेर, ब्राह्मी रस ४ सेर, भृंगराज का रस ४ सेर, गाय का दूध ४ सेर, दही ४ सेर तथा इसके साथ-साथ कुछ काष्टादि औषधियां हैं, वह भी जल ४ सेर में भिगोकर तैल में डालनी पड़ती हैं। २॥तोला पद्माख, २॥ बड़ी इलायची, २॥तोला आँवला, २॥ बड़ी हरड़ का छिलका, चन्दन बुरादा २॥ तोला, मजीठ २॥ तोला, वटांकुर २॥ तोला, गुलाब फूल २॥ तोला, कपूर का चरी २॥ तोला, खस २॥ तोला—इन सबको पानी में भिगोयें और सुबह महीन पीस कर लुगदी बनावें एवं उसे तैल में पकावें। प्रथम तैल को गरम करके उतारें फिर एक-एक करके सब रस, दूध उसमें डालें और वह लुगदी भी डालें। जलते-जलते सब जल जायेंगे, सिर्फ तैल मात्र रह जायगा। उस वक्त उतार कर ठंडा होने पर छान कर साफ बर्तन में भर लें और २॥ तोला चन्दन का तैल उपमें डाल दें। सुगन्ध के लिये यह तैल इतना सुन्दर और अच्छा तैल बन जायगा कि मस्तिष्क की हर बीमारी में काम करेगा। यह तैल इन्द्रयुक्त, असमय का गंजापन, शिर-दर्द, बालों का झड़ना, न बढ़ना—सब में बहुत ही अच्छा कार्य करता है। सप्ताह में सिर की धुलाई बेसन और दही से जरूर करनी चाहिए। यह तैल स्त्री और पुरुष दोनों को ही लाभदायक है।

(ञ) शिरःशूल और उपाय :

यद्यपि 'शिरःशूल' एक ही रोग है, किन्तु स्त्रियों को यह रोग विशेष कारणों से भी होता है। सामान्य रूप से मस्तिष्क का वर्णन भी कर देते हैं—मनुष्य

मस्तिष्क के द्वारा स्पर्श ज्ञान तथा देखने-सुनने और सूँघने आदि का ज्ञान भी इसीसे करते हैं। इसी के द्वारा तर्क व विचार करके अपनी उन्नति के नवीन-नवीन उपाय करते हैं तथा दया, स्नेह, भक्ति और आत्मज्ञान प्रभृति की प्राप्ति करते हैं। यह हमारे सभी कार्यों का आधार है, ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी। यह आठ हड्डियों से वना हुआ कपाल नामक कोठा है। उसके भीतर मस्तिष्क रहता है, यह अण्डे की शक्ल का होता है। भीतर का भाग अखरोट के गूदे के जैसा दीखता है। पिछला भाग चौड़ा व मोटा होता है, इसकी लम्बाई साढ़े ६इंच, चौड़ाई ५॥इंच, मोटाई ५ इंच तक होती है। पन्द्रह से लेकर उनचास वर्ष की अवस्था तक प्रायः वजन में डेढ़ सेर का होता है। स्त्रियों का २॥ छटांक कम होता है। मस्तिष्क ही मन का आधार है। यही मनुष्य के ज्ञान, बुद्धि और धर्माधर्म का प्रधान पथ है। मन के साथ स्वास्थ्य का अति निकट सम्बन्ध है शरीर को आरोग्य रखने के लिये मन को प्रत्येक समय में स्वस्थ रखना चाहिए। जो व्यक्ति अत्यधिक परिश्रम करते हैं तथा चिन्ता करते हैं, उनका मन रोगी हो जाता है। इस अत्यन्त परिश्रम से मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और उसकी स्मरण शक्ति कम हो जाती है। वात याद नहीं रहती, नींद नहीं आती, सिर में दर्द होता है तथा घूमता रहता है, भोजन नहीं पचता। क्योंकि चिन्ता का असर स्नायु समूह (मस्तिष्क) पर वहुत जल्द होता है। जिससे शिरःशूल यानी सिर-दर्द होता है। यह योग ग्यारह तरह का होता है :—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज, सूर्यावर्त, अनन्तवात, शंखक, अर्द्धावभेदकः। जिस दोष से यह रोग होता है, वह दोष उसमें निहित होते हैं और उसके लक्षण स्पष्टतः दिखाई देते हैं।

वातज शिर-दर्द—अकस्मात् हो जाता है और रात्रि में विशेष होता है। तेल मर्दन करने से शिर वांधने से कम हो जाता है।

पित्तज—शिर में लप- लप-सी होती है मुख और नाक से आग की लपटें-सी निकलती है, शिर आग की तरह तपता है। शीतल क्रिया करने से आँवला, धनियां पीसकर लेप करने से शान्ति मिलती है।

कफज—आँखें सूज जाती हैं, सिर ठंडा और भारी मालूम देता है। इसमें त्रिभुवन कीर्ति लेना चाहिए।

सन्निपातज—तीनों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

रक्तज—मस्तक छूने से शिर में अधिक वेदना होती है। पित्तज और रक्तज में एक-सी ही चिकित्सा होता है।

क्षयज—शरीर घूमता है, सूई चूभने जैसी पीड़ा होती हैं। मूर्च्छा व अंग में ग्लानि होती है। इसमें शिर की चर्वी, कफ, खून के अत्यन्त कम हो जाने से रोग होता है, यह कष्टसाध्य है। उपर्युक्त चीजें साम्यावस्था पर आ जायँ, वह यत्न करें।

कृमिज—शिर में कीड़े पैदा होने से हो जाता है—जोर से दर्द होता है, नाक से पानी गिरता है तथा खून मिला कफ जैसा भी आता है। इसमें नाक व कान में कपूर व ककरोंदा का अर्क निकाल कर (ककरोंदा—जंगल में बरसात के समय हो जाता है) पिचकारी लगावें।

सर्यावर्त—यह सूर्य उदय से प्रारम्भ होता है और दोपहर के बाद कम होता जाता है। इसमें कभी सर्द तथा कभी गर्म औषधि देनी पड़ती है।

अनन्त वात—नेत्र, गर्दन और शिर की रगों में दर्द होता है। पहले गर्दन में, पीछे ललाट में तथा कनपटियों में रुक जाता है। कम्प, हनुग्रह एवं आँखों के रोग होते हैं। चिकित्सा वायुशामक होती है।

शंखक—यह तीनों दोष व रक्त से कनपटियों में सूजन पैदा करता है। जिस दिन यह रोग प्रारम्भ हो तीन दिन बाद चिकित्सा करें। क्योंकि इसकी तीव्र वेदना रोग बढ़ते समय शीघ्र शांत नहीं होती है।

अर्धावभेदक—आधे भाग में दर्द होता है, इसमें काला पुनर्नवा के पत्ते २०, कपूर, श्वासकुठार रस ८ रत्ती पीस कर लेप करने से ठीक हो जाता है। अथवा मुचुकन्द के फूलों को पीस लेप करने से ठीक हो जाता है। नस्य भी देना चाहिए।

शिरो रोग में—चन्द्रकान्त रस, षड्बिन्द तैल, शिरःशूलादि वज्र रस आदि औषधियों कार्य करती हैं।

स्त्रियों को इसके अलावा प्रदर तथा प्रसूति और मासिक की गड़बड़ी आदि से भी दर्द होता है।

सर्दी, जुकाम, यकृत् दोष, अजीर्ण, कष्ट, ज्वर आदि से भी दर्द होता है।

यह तो पहले ही बता चुके हैं कि सारी बीमारियों की जड़ पेट की खराबी है। यदि पेट की संचालन-क्रिया ठीक रहेगी, तो मस्तिष्क भी ठीक रहेगा। वैसे तो मस्तिष्क-दर्द में सबसे पहले कारण देखना चाहिये। यदि जुकाम से हो तो

वैसी चिकित्सा करनी चाहिए। जिस कारण से हो उसी कारण की चिकित्सा करनी चाहिए। कब्ज का पूरा ख्याल रखना चाहिए, यदि कब्ज हो तो हल्की सी किशमिश और त्रिफला युक्त कोई दवा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिए।

(१) सेंधा नमक को पानी में डालकर सूर्य निकलने से पहले नासिका से सूँघें। आधा शीशी के उपयोग से यह बीमारी मिट जायगी, साथ-साथ सब प्रकार के दर्द में लाभ होगा।

(२) सुवह उठकर घी (गाय का) और कपूर को सूंघने से मस्तिष्क-दर्द हर प्रकार का मिटता है।

(३) जायफल छाल के चूर्ण में कपूर मिलाकर सूँघने से छींक आकर सब प्रकार के शिरःशूल मिटते हैं।

(४) किशमिश २॥ तोला रात्रि को पानी में भिगो दें। सुवह चबाकर ऊपर से दूध पीने से कमजोरी और शिर-दर्द मिटता है।

(५) सफेद फिटकिरी का फूला एक आना भर चीनी मिलाकर गरम दूध से सुवह-शाम सेवन करने से हर प्रकार का शिर-दर्द मिटता है।

(ट) मुख के रोग और उपाय :

मुख में रोगों की संख्या पैंसठ है। यह सात स्थानों में रहते हैं, जिसमें हम मुख पाक को प्रस्तुत करते हैं :—

वात, पित्त और कफ के दूषित होने से यह रोग हो जाता है। उदर में कब्ज होने पर पेट की गर्मी ऊपर की ओर आती है, तव मुख की श्लैष्मिक कला में घाव पैदा करती है, क्योंकि वह कला उस गर्मी को वर्दाश्त नहीं कर सकती है। इसी को मुख पाक--छाले कहते हैं।

वादी के मुख पाक में सारे मुंह में छाले हो जाते हैं, और उनमें नोंचने का-सा दर्द होता है।

पित्त के मुख पाक में—लाल और पीले रंग के छाले होते हैं तथा उनमें जलन होती हैं।

कफज में—मुख पाक होने से पीड़ा तो नहीं होती, परन्तु खुजली वहुत आती रहती है। इनका रंग जैसा चमड़े का होता है वैसा ही होता है, अतः इसको 'सर्वसर' कहते हैं। वच्चों को, जिनके दांत अक्सर निकलते समय, यह छाले वहुतायत से होते हैं—जिह्वा से मुंह से लाला स्राव बहुत होता है, यहाँ तक कि पहने जानेवाला

कपड़ा ही नहीं भींग जाता, बल्कि कपड़े की गद्दी भी बना देते हैं वह भी तर हो जाती हैं जिनके कारण बच्चा बड़ा ही परेशान होता है और उससे दूध भी नहीं पीया जाता। तब व कमजोर हो जाता है तथा सूखा रोग में तो लगभग छाले रहते ही हैं। हम सब प्रकार के छालों में गूलर के फल पके लेकर पानी में छोटे-छोटे टुकड़े कर डाल दें, और उस पानी से उसके मुंह के भीतर के हिस्से को जिनमें छाले हैं कपड़ा या रुई तर कर थोड़ी-थोड़ी देर तक रख करें, यह क्रिया ३ दिन बराबर करें। याद रहे उस पानी में पड़े फलों को खूब हाथ से मसल कर छान लें तथा जरा-सी फिटकिरी भी डाल दें तो अच्छा ही है। शहद में सुहागा का फूला मिलाकर लगाने से भी ठीक होता है। शनिवार के दिन चूल्हे पर फेरने वाला पोतन प्रातः बिना टोके बच्चे के मुंह पर लगा दें और कुछ मुंह के भीतर भी निचोड़ दें। छिपकली की टट्टी पर जो सफेद रंग का एक हिस्सा होता है उसे मुंह में मल देते हैं, उससे भी ठीक हो जाता हैं।

पानी में शहद मिलाकर कुल्ला करने से भी ठीक होते हैं। छोटी इलायची के बीज, शीतल चीनी, कत्था सफेद, हंसराज—यह चीजें लेकर खूब बारीक पीस कर मुंह में छालों पर बुरक देवें, दिन में ४-५ के ऐसा करने से लाभ हो जाता है। यदि केवल कब्ज से हो तो त्रिफला का चूर्ण रात को ६ माशा गर्म पानी के साथ-साथ २ दिन फाँक लेने से ठीक हो जाता है।

(ठ) आमवात और चिकित्सा :

आमवात को हिन्दी में गठिया या सन्धिवात कहते हैं। आम और वात यह दोनों शब्द मिलाने से "आमवात" शब्द बनता है। जठराग्नि की कमजोरी से भोजन का सार रस जब रक्त में परिणत हो जाता है यानी रस का खून नहीं बनता तब वह रस आमाशय और अन्य स्थानों में जमा हो जाता है। उस संचित हुए पदार्थ को ही आमवात कहते हैं।

जो शरीर के भीतर विचरण करती है, जिसकी ताकत से शरीर की सम्पूर्ण शक्तियाँ अपना-अपना कार्य करती हैं और जो इन्द्रियाँ अतीन्द्रियों के द्वारा जानी जाती हैं, जैसे "स्पर्शवान वायु" केवल स्पर्शमात्र से ही ज्ञान होता है।

दुष्ट वायु के द्वारा आमाशय प्रभृति में जमा हुआ आम रस चलायमान होकर कफ-पित्त के साथ मिलकर विदग्ध या खट्टा हो जाता है। वही खट्टा रस शरीर की सन्धियों या जोड़ों प्रभृति में अवस्थित होकर ज्वर और तोड़ने की-सी

पीड़ा आदि लक्षणोंवाले जिस रोग को पैदा करता हैं, उसी को "आमवात" कहते हैं।

प्रकृति विरुद्ध, समय विरुद्ध और संयोग विरुद्ध आहार, विरुद्ध चेष्टा, असुख-कारक कर्म, मिहनत न करना, चिकने अन्नपान सेवन करने के बाद तत्काल ही घोर परिश्रम करना, गीले, भींगे अथवा सील के घर में रहना, गरमी या धूप से तपे हुए शरीर में शीतल जल से नहाना अथवा शीतल जल पीना, शीतल वायु में रात्रि को कपड़ा ओढ़े बिना ही सोना। एक साथ आते हुए पसीनों को रोकना, अग्नि मन्द होना आदि आम और वायु को कुपित करनेवाले आमवात के अनुकूलतावाली प्रकृति आदि आमवात के कारण हैं। इन समस्त कारणों से आम रस का संचार होता है और वायु का कोप होता है। इनके साथ ही कफ और पित्त भी कुपित हो जाते हैं।

कुपित हुए वायु-कफ और पित्त को अपने मददगारों की तरह साथ लेकर और आम रस को उसके स्थान से रस बहानेवाले स्रोतों या छेदों में ले जाकर उससे उसको वन्द कर देती है। छेद वन्द होने से शरीर में कमजोरी, हृदय में भारीपन, काम में दिल न लगना, शरीर के अनेक स्थानों में अनवस्थित-अस्थिर वेदना और भोजन में अरुचि आदि लक्षण आमवात के पहले होते हैं। अनन्तर आम रस खट्टा होकर शरीर की संधियों, जोड़ों में ठहर कर पीड़ा करता है। हाथ, पांव, सिर, गुल्म, त्रिक, जाह्नु और घुटनों की संधियों में पीड़ायुक्त सूजन आदि ज्वर पैदा होते हैं। यही विशेष लक्षण हैं।

भावप्रकाश में लिखा है—आमवात से मन्दाग्नि होती है। मुँह में थूक आता है, नाक से पानी गिरता है, अरुचि होती है। उत्साह नाश, पेशाव अधिक आता है, पेट कड़ा हो जाता है। नींद नहीं आती, संधियों में संकोच, लूलापन, टेढ़ापन, स्वरभंग और पैरों में सूजन आदि उपद्रव हो जाते हैं।

पित्त की अधिकता होने से सूजन से फूला हुआ शरीर एकदम से लाल हो जाता है और उसमें वड़ी जलन होती है।

वात की अधिकता में सूजन वहुत नहीं वढ़ती, परन्तु तोड़ने-फोड़ने की-सी पीड़ा होती है।

कफ प्रधान वात से सूजन, गीली, भारी और खुजली उत्पन्न होती है।

एक दोष को आमवात साध्य, दो दोषों को भाग्य और तीन दोषों को असाध्य जानना चाहिए। क्योंकि सारे शरीर में शोथ हो जाता है। रोगारम्भ होते ही चिकित्सा करानी चाहिए अन्यथा कष्टसाध्य हो जाता है।

इस रोग में प्रथम लंघन कराओ, सेंक करो, तिक्त, अग्नि दीपक और तीक्ष्ण पदार्थ

सेवन कराओ, जुलाब दो, स्नेहन कर्म करो और पिचकारी लगाओ, इससे लाभ होता है। योगराज गुग्गुलु, पुनर्नवादि चूर्ण, एरण्ड तैल प्रति दिन लेना चाहिए। पंचकोल चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण भी लेते रहना चाहिए। अजमेहारि वटक खिलाकर ऊपर से महारास्नादि क्वाथ पिलाना, महावात विध्वंसन रस, वातगजकेशरी, गुग्गुलु देना चाहिए और वृहत्सैंधावादि तैल, प्रसारिणी तैल, द्विपंचमूल तैल का उपयोग करना हितकर है।

इस रोग में दही, मछली, गुड़, दूध, पोई, बड़े, कचौड़ी, पूर्वी वायु, मैला पानी, वेग रोकना, भारी और अभिष्यन्दी भोजन—ये सब हानिकारक है। चावल तो किसी हालत में नहीं खाना चाहिए।

(ड) मोटापा और उसके उपचार के उपाय :

मेद-वृद्धि या मोटापा :—यह रोग मनुष्यों को कम होता है, पर स्त्रियों को अधिक होता है। मेहनत या कसरत न करने से, दिन में सोने के अभ्यास से, कफकारी आहार-विहार से, मीठे पदार्थ खाने से तथा घी और चिकने पदार्थों से यह मेद-वृद्धि होती है।

मेद से मार्ग रुक जाने के कारण और धातुओं का पोषण नहीं होता अतः मेद बढ़ती जाती, है जिससे मनुष्य सब कामों में अशक्त हो जाता है।

मेद और मांस के अत्यन्त बढ़ने से मनुष्य के कुल्हे, पेट और स्तन हिला करते हैं। जिसकी मेद अयोग्य रीति से बढ़ती है, वह बहुत मोटा कहलाता है। मोटे मनुष्य को कोढ़, विसर्प, भगन्दर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद, अपची और कामला ये दुस्तर रोग हो जाते हैं। पसीनों में दुर्गन्ध आने पर छोटे-छोटे जीव भी पैदा हो जाते हैं।

चिन्ता, परिश्रम, स्त्री प्रसंग, उबटन, लंघन, धूप में बैठना, हाथी-घोड़े पर चढ़ना, जुलाब लेना, पुराने चावल खाना, जौ, चना, मसूर, मूंग, अरहर, बैंगन का भुर्त्ता, त्रिफला, गुग्गुलु, कच्चा केला, परवल, मिश्री मिला मट्ठा तथा सबेरे उठकर ४-५ मील हवा खाने जाना, कसरत—ये सब पथ्य हैं।

जितने भी कफकारक पदार्थ हैं, जैसे—चिकने, दूध, दही, मक्खन, मांस, पका केला, नारियल, मछली, कोई पुष्टिकारक भोजन, सुखदाई बिछौने, बेफिक्री—ये सब हानिकारक हैं।

अमृतादि गुग्गुलु, दशांग गुग्गुलु, त्र्यूषणादि लौह (लौह रसायन) के सेवन से बड़ा ढोल-सा पेट भी पतला हो जाता है। जब लौह रसायन का सेवन करें तब केला, कुन्द, कांजी, करौंदे, करील, करेला—इन छः पदार्थों को छोड़ देना चाहिए।

यदि सारे शरीर पर लेप लगाव तो बड़ा ही अच्छो होगा—सफेद चन्दन, शिलाजीत, देवदारु, रेणु का बीज, स्पृक्का, नागरमोथा, कूट, अगर, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, चमेली फूल और लौंग—इनको धत्तूरे के स्वरस में घोंटकर शरीर पर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से मुटाई अवश्य नष्ट हो जाती है।

(ढ) दुर्बलता दूर करने के साधन :

मनुष्य का जन्म धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिये हुआ है। इसी को चतुर्वर्ग कहते हैं। इस चतुर्वर्ग को हम तव प्राप्त कर सकते हैं, जब हम स्वस्थ रहें यानी हमारा शरीर आरोग्य रहे। "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्" अतः सबसे प्रथम आवश्यकता यही है कि हम शरीर को सुदृढ़ बनावें। शरीर सुदृढ़ कैसे होगा? हम बलवान कैसे होंगे?

"बलेन पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षम्।

"वीर्यमेव बलम् बलमेव वीर्यम्॥" अर्थात् बल से पृथ्वी ठहरी है, आकाश भी बल से ही ठहरा हुआ है, वीर्य ही बल है और बल ही वीर्य है।

अतः सर्वप्रथम आवश्यकता यही है कि बलवान बनो। ब्रह्मचर्य या वीर्यरक्षा के द्वारा हम बलवान बन सकेंगे। साथ-ही-साथ यह भी परमावश्यक है कि शुद्ध आहार, शुद्ध विहार और शुद्ध विचार करें।

शास्त्रकारों ने इस बात को बार-बार बतलाया है कि जीवनसंग्राम में विजयी होने के लिये मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। मनुष्य ब्रह्मचर्य की शक्ति से सारी दुनिया को हिला सकता है और असम्भव को सम्भव बना सकता है। मृत्यु के ऊपर भी विजय पानेवाले महाबली भीष्म का सबसे बड़ा बल उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य ही तो था, जिसके कारण उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को भी प्रतिज्ञा से च्युत किया और अपनी इच्छा के अनुसार ही मौत का दिन और समय निश्चित किया।

महावीर (हनुमान) का नाम उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य के कारण ही तो प्रसिद्ध है। देवताओं तक से नौकरी करानेवाला विश्वविजयी रावण के घर पर पहुँचना, लम्बे समुद्र को लांघकर दुश्मन के घर में घुसना, उसी महाबली का काम था तथा मेघनाद जैसे शक्तिशाली की उपस्थिति में लंका जला डालना, यह वीर्यधारी की ही तो ताकत थी।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपघ्नत्।

इन्द्रो हि ब्रह्मचर्येण देवेभ्यश्च स्वरामरत्॥

देवताओं ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अमरत्त्व प्राप्त किया। मौत (काल) की शक्ति को पछाड़नेवाला केवल एक ब्रह्मचर्य ही है।

महावली मेघनाद को मारना कोई हँसी-खेल नहीं था—जो वारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन कर सका हो, वही उसे मार सकता था। लक्ष्मण ने इसी बल से उसका संहार किया।

ब्रह्मचर्य की रक्षा में यह आठ वातें छोड़ देनी चाहिए।

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च ॥

इसके साथ-ही-साथ मन और इन्द्रियों का संयम भी अत्यावश्यक है। मनुष्य को वनाने और विगाड़ने का काम मन ही करता है। अतः मन की पवित्रता पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। "पराञ्चिखानि व्यतरत् स्वयंभू॥" विधाता ने इन्द्रियों को उलटा वनाया है, वह मनुष्य को नीचे की ओर शीघ्रता से ले जाती हैं अतः इनको ठीक अपने आधिपत्य में रखना चाहिए। इस संयम के लिये प्राणयाम परमोपयोगी है ऐसा मेरा अनुभव है। जैसा भोजन करेगा, वैसा ही मन बनेगा, अतः देखा गया है भोजन के कारण ही मनुष्य चोरी करता है, डाके डालता है और मांस, मदिरा जैसी चीजें खाता है। भोजन सादा होना चाहिए तथा रहन-सहन भी सादा ही होना चाहिए। प्रतिदिन सत्संग करना चाहिए। चाय, भांग, तम्वाकू, मदिरा, मांस, प्याज, लशुन आदि तामसिक द्रव्य उपयोग में नहीं लाने चाहिए। इन सब वातों के करने से मनुष्य स्वस्थ रहेगा और किसी भी प्रकार से कमजोर हो गया है तो उसके उपाय भी लिखे जा रहे हैं। मकरध्वज, स्वर्णवंग, वसन्तकुसुमाकर रस, शक्रवल्लभ रस आदि रसों का उपयोग करना चाहिए।

विदारी कन्द, असगन्ध, गोखरू, तील मखाना, शतावरी, कोंच के वीज, विधारा, मुलहठी, कपूर, धनियां, आंवला, खरेटी की छाल लेकर दूनी मिश्री लेकर वारीक चूर्ण वना लें। ६ माशा प्रातः ६ माशा शाम दूध से लें और व्यायाम प्रतिदिन करें, लंगोट बांधें, अवश्य ही कमजोरी दूर होगी। भगवान का ध्यान और भजन तो हृदय से करना यह सवसे वड़ी औषधि है। मुनक्का के दाने ५, छुहारा नग २, काली मिर्च, सौंफ, खरेंटी की पत्ती १०, फूल गुलाब, धनियां की ठंडाई प्रतिदिन दोनों समय पीना चाहिए। शरीर के अनुसार पौष्टिक आहार नियमित समय पर करना भी हितकर है।

(ण) संक्रामक (छूत) रोग और उसकी चिकित्सा :

रोगोत्पादक जीवाणु जिस प्रक्रिया से एक शरीर से दूसरे शरीर पर आक्रमण कर रोग का संचरण करते हैं, उसको संक्रामक रोग कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ औपसर्गिक रोग कीड़ों द्वारा भी फैलते हैं यथा—चूहे के पिस्सू के दंश से प्लेग, मच्छरों के दंश से मलेरिया ज्वर, श्लीपद, पित्त ज्वर, दण्डक ज्वर, (डेंगू फीवर), एक प्रकार के भुनगे के दंश से काला ज्वर और थूक-दंश से पुनरावर्तक ज्वर, टाइफाइड ज्वर आदि फैलते हैं।

दो सहस्त्र वर्ष से पूर्व सुश्रुत-चरकादि महर्षि प्रणीत संहिताओं में संक्रामक रोगों का वर्णन मिलता है।

यथा—प्रसंगात् गात्रसंस्पर्शात् निःश्वासात् सहभोजनात्।
एक शय्यासनाच्चापि वस्त्र माल्यानुलेपनात्॥

स्त्री प्रसंग से, गात्र के स्पर्श से, रोगी के साथ उठने-बैठने से अर्थात् त्वचा के द्वारा उपदंश, मधुमेह, धनुस्तम्भ, विसर्प, जलसंत्रास, मसूरिका प्रभृति रोगों का संक्रमण होता है।

रोगी के निःश्वास के सम्पर्क से अर्थात् श्वास-प्रश्वास के द्वारा—राजयक्ष्मा, कफोल्वण—सन्निपात (इन्फ्लुएंजा), श्वसनक ज्वर (न्यूमोनियां), रोहिणी (डिप्थीरिया), हुक्कुर कास (काली खाँसी) प्रभृति का संक्रमण होता है।

रोगी के साथ भोजन करने से अर्थात् मुख के द्वारा ज्वर प्रवाहिका, विसूचिका आदि का संक्रमण एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य पर होता है। एक शय्या पर लेटनेसे, वस्त्र, माला धारण करने से एवं चन्दनादि द्रव्यों का लेप लगाने से भी एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य पर रोग का संक्रमण हो जाता है।

कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभ्यष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥

चरक संहिता में क्रमियों का वर्णन है कि इतने सूक्ष्म होते हैं कि चक्षु से दिखाई नहीं देते, "सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदृश्याः" आयूर्वेद में कुष्ठ रोग की उत्पत्ति दोषों के साथ क्रमिजन्य भी मानी गई है। सुश्रुत में —

"सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रमीणि भवन्ति"

इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद में जीवाणुवाद का अस्तित्व विद्यमान है। जनपदोध्वसंक महामारियों से त्राण पाने के लिये महर्षि आत्रेय ने निम्नलिखित उपाय बताये हैं—रसायन औषधियों का सेवन सद्वृत्तानुष्ठान यानी दिनचर्या,

ऋतुचर्या तथा रात्रिचर्या के नियमों का पालन करना चाहिए, प्रतिदिन हित आहार-विहार सेवन करें।

दोष-संशमन—वर्षा ऋतु में वायु, शरद में पित्त, वसन्त में कफ का प्रकोप होता है, वमन-विरेचनादि से शरीर की शुद्धि करना।

हितजन पद सेवन—विसूचिका-प्लेग आदि फैली हो तो उसको परित्याग कर स्वस्थ स्थान में वास करें।

ब्रह्मचर्यानुष्ठान— स्मरण, कीर्तन, केली आदि त्याग कर ब्रह्मचर्यानुष्ठान करें।

धर्म कार्यों का अनुष्ठान—महामारियों का प्रकोप अधर्म जन्य है, ऐसी आर्ष सम्मति है। अतः धर्म कृत्य, यज्ञानुष्ठान, हवन, धर्मोपदेश, प्रभृति कार्य संक्रामक रोगों का निरोधक उपाय है।

संक्रामक रोग दो प्रकार के होते हैं—(१) संपर्गिक—खाज, उपदंश आदि, (२) महामारी, विसूचिका, वातालिका (प्लेग) आदि।
विषम ज्वर—पटोलादि क्वाथ पिलाना।

विसूचिका (हैजा)—संजीवनी बटी प्याज के अर्क के साथ दें। अर्क पुदीना, अर्क सौंफ पिलाइये।

मोतीझरा—१ पाव का एक छटांक पानी २ लौंग डालकर देवें। मोती भस्म, संजीवनी देते रहें।

खाज में—गंधक, पारा की कजली करो, उसमें मेनसिल मिला दो, पुनः खुरासानी, अजवाइन डाल खूब रगड़ो, सरसों तेल में डाल पका लो और सारे वदन पर मलो, खाज-खुजली, चकत्ते, रक्तविकार, पामा आदि दूर हो जावेंगे। यदि खाज पक गई हो तो दही तांबे के बर्तन में डाल तांबे के पैसे से १ दिन बराबर घोंटो, फिर उसे ही लगा दो।

उपदंश—चन्दन का तेल ५ बूँद बताशा में डाल कर १ सप्ताह खाते रहना। सफेद राल को तेल सरसों में डालकर घोलों, मरहम तैयार हो जायगा।

राजयक्ष्मा—प्रतिदिन हवन करो और उसकी राख को भिगो कर नितार लो। उस पानी को जला लो बस यही सफेद रंग की दवा मधु के साथ चाटो। खूबकला, अजवाइन को बारीक पीस कर २ कुल्हड़ों को गर्म करो और कुल्हड़ों के पानी में यह दवा डालें, फिर दूसरे में, तब इस जल को पी लिया करें।

शीतला—दूध में केशर डाल कर पिलावें। नीम की सूखी पत्ती, वहेड़े की मींग, रुद्राक्ष दाना, केले के बीज ६-६ माशा पीस कर गर्म जल से २-२ रत्ती देवें।

गर्दन तोड़ ज्वर—जटामांसी २ भाग, मेनसिल और हरताल ½ भाग जौ कुट चिलम में रख पिलाइये।

प्लेग—राल तथा तेजाब गन्धक को मिला चूहों के विलों में डालें, फर्श फिनाइल से घोवें, शिरस के बीज १ तोला, हरे पत्ते नीम १ तोला, काली मिर्च १ तोला, इसकी गोलियां वना खिलावें। नागफनी के गूदे की पुल्टिस वना गिलटी पर बाँधें।

(त) मुँहासे : उनको दूर करने के उपाय :

वात, कफ और खून के कोप से जवानी में मुंह पर जो सेंमल के काँटों के समान फुन्सियाँ होती हैं, उन्हें बोलचाल की भाषा में 'मुँहासे' और संस्कृत में 'मुख दूषिका' कहते हैं। इनसे खूवसूरत मुखमण्डल वदसूरत दीखने लगता है, जिससे लोग व स्त्रियाँ वड़ी ही परेशान होती हैं और इनके दाग तो जीवन में कभी भी जाते ही नहीं हैं।

इसकी तीन सूरतें होती हैं—(१) मुँहासे, (२) न्यच्छ, (३) नीलिका।

मुँहासों में जवासे का काढ़ा हर स्थान पर लिखा है कि उससे मुँह धोया करें।

हल्दी, मसूर, मजीठ, लोध, इनको पानी में पीस कर रात को सोते समय लेप करके सो जायें।

चिरौंजी, हल्दी पीसकर मुंह पर मलें।

गोरोचन, काली मिर्च को पानी के साथ पीस कर लेप करें।

नीलिका दूर करना—गोंद कतीरा और निशास्ता, ईसवगोल के पानी में या लुआव में पीस कर मुंह पर मलने से मुंह का रंग साफ और उजला हो जाता है। वंगभस्म, लाख का रस (महावर) इन दोनों को मिलाकर लेप करने से न्यच्छ दूर होता है।

मस्से—ये अक्सर मुंह पर हो जाते हैं—तो पान के डंठल पर चूना जो पान लगाने के काम में आता है लगाकर, मस्से पर रगड़ने से मस्सा उसी समय कट-कट कर गिर जायगा और पुनः उस स्थान पर नहीं होगा। मोर की वीट सिरके में मिलाकर मस्सों पर लगाने से मस्से नष्ट हो जाते हैं।

धनियां पीस कर लगाने से मस्से और तिल नष्ट हो जाते हैं।

यह स्मरण रहे कि वीर्य में गर्मी होने के कारण भी मुंहासे निकलते हैं, तब त्रिफला का चूर्ण २ माशे रात को सोते समय पानी के साथ १ माह तक फाँकें, इससे वीर्य की गर्मी शान्त हो जाती है।

सीप की राख सिरके में मिलाकर लगाने से भी मस्से दूर हो जाते हैं।

(थ) कब्ज और उसके उपाय :

लगभग सभी रोगों का मूल कब्ज ही है। कब्ज किसे कहते हैं ?

खाया हुआ भोजन या आहार प्राणवायु से संप्रेरित होकर सर्वप्रथम मुख पश्चात् अन्नप्रणाली के अनन्तर क्लेद कफ के संपर्क में आकर आहार-रस मधुर-रसमय हो जाता है और आमाशय प्राचीरों के सतत आकुंचन एवं प्रसारण से आहार फेन रूप हो जाता है। यथा दही को किसी पात्र में रख विलोने से वह फेन रूप हो जाया करता है।

यह मधुर-रसमय और फेन रूप आहार पाचक-पिंत्त के द्वारा परिपक्व होते हुए अम्ल रसमयता को प्राप्त हो जाता है। आमाशय में आहार अम्लरसमय होकर समान वायु के द्वारा 'ग्रहणी' में संप्रेरित किया जाता है।

जिस प्रत्यंग में पाचक पित्त रहता है, वह छठवीं पित्तधरा कला के नाम से प्रख्यात है। आमाशय और पक्वाशय के मध्य में जो स्थित है, उसे ग्रहणी कहा जाता है।

आहार जब ग्रहणी में आ जाता है, तब इसका परिपाक कोष्ठाग्नि (अग्न्याशय) द्वारा होकर, कटु रसमय हो जाता है। कटु रसमय 'आहार-रस' जब सम्यक् प्रकार से परिपक्व हो जाता है, तब उसकी 'रस' संज्ञा होती है। जब तक आहार-रस का सम्यक् परिपाक नहीं हो जाता है, तब तक उसकी आम रस संज्ञा रहती है।

परिपक्व रस अग्न्याशय—सम्बल द्वारा मधुर रसमय एवं स्निग्धता को प्राप्त हो जाता है। यह अमृत के समान स्निग्ध और मधुर रसमय "रस" शरीर की समस्त धातुओं का सम्पोषण करता है।

यदि अग्न्याशय की इस क्रिया के कारण आहार रस का सम्यक् परिपाक नहीं हो पाता, तो यह कटु और अम्ल रसमय ही रह जाता है। परिणामस्वरूप यह विषम भाव को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् विष तुल्य हो जाता है। अथवा

नाना विध रोग-संक्रमण का कारण बन जाता है। "सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मला" इति तब अलसक, विसूचिका आदि आशुमारक व्याधियाँ इसी परिस्थिति में उत्पन्न होती हैं।

सम्यक् परिपक्व आहार के सार भाग की रस संज्ञा हो जाती है और वह पाचक संस्थानस्थ कफकला से आत्ससात् होकर शरीरस्थ धातुओं का सम्पोषण करता है। परन्तु जो सारहीन रस बच जाता है, वह 'मल द्रव' कहलाता है। इस मल द्रव के द्रवांश का भी कफ कला में स्थित शिरा धनमियों में आत्मसात् होता है। इस मल-द्रवांश या किट्ट-द्रवांश का शिरा धमनियों द्वारा संवहन होते हुए वस्ति (वृक्क एवं मूत्राशय) में आकर मूत्रत्व को प्राप्त हो जाता है।

जब मल-द्रवांश या किट्ट-द्रवांश शिरा धमनियों द्वारा वृक्क एवं मूत्राशय में आ जाता है, तब शेष रह जाता है केवल मलांश या किट्टांश। यह किट्टांश पूर्वापेक्षा पर्याप्त प्रगाढ़ होता है। इसी को मल, किट्ट या पुरीष कहते हैं। यही पाचक संस्थान के पक्वाशय, प्रत्यंग—अर्थात् मलाशय (रेक्टम) में आकर ठहरता है।

अब मलाशय से मल अपान वायु के द्वारा संप्रेरित होकर वलित्रित मार्ग (तीन वलियों वाला प्रत्यंग) यानी "गुद मार्ग" में आ जाता है। इस गुद मार्ग में—प्रथमा—प्रवाहिणी वलि, द्वितीया—सर्जनी वलि और तृतीया या अन्तिमा—ग्राहिका वलि होता है। प्रथमा द्वारा नीचे की ओर प्रवाहण होता है। द्वितीया द्वारा मल का नीचे की ओर उत्सर्जन होता है। तृतीया द्वारा पुनः-पुनः आकुंचन एवं प्रसारण होता है ताकि ऊपर की दोनों वलियों एवं मलाशय में स्थित मल का नीचे की ओर ग्रहण होता रहे।

ऊपर बता चुके हैं कि अग्न्याशय की मंद क्रिया के कारण साथ-ही-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भोजन पर भोजन करने के कारण आहार-रस का सम्यक् परिपाक नहीं होता तब यह कब्ज अग्निमांद्य रूप में हमारे सम्मुख आता है, इसी से अनेक रोगों का फैलना होता है।

इस कब्ज को दूर करने के लिये यानी शरीर-शुद्धि के लिये शरदऋतु (कार्तिक, मार्गशीर्ष) तथा वसन्तऋतु (फाल्गुन, चैत्र) में विरेचन देना चाहिए। अन्य ऋतुओं में भी यदि रोगी विशेष कष्टमय रोग से ग्रसित हो, तो वमन-विरेचन कर्म अवश्य करना चाहिए।

एरण्ड तैल से विरेचन अच्छा हो जाता है। अभयादि मोदक नाम की गोली से पेट साफ हो जाता है। कुटकी, निसोत, दन्ती, हर्रे आदि औषधियों से भी कब्ज दूर होता है।

कब्ज तीन प्रकार का होता है। वात की प्रधानता से विष्टब्धाजीर्ण पित्त की अधिकता से विदग्धाजीर्ण और कफ की प्रधानता से आमाजीर्ण होता है। इसके अलावा विषाजीर्ण और रसाजीर्ण भी होता है। इन्हीं तीन अजीर्णों से अलसक रोग, विसूचिका, दण्डालसक और विलम्बिका रोग हो जाते हैं। ये तीनों रोग वात एवं कफ के प्रकोप से होते हैं। इन तीनों में मुख और नीचे गुदा मार्ग से वायु अथवा मलादि का निःसरण नहीं होता। इन तीनों में परस्पर भेद यही है कि अलसक में शूल अति तीव्र होता है। दण्डालसक में शरीर दण्ड के समान हो जाता है तथा शूल विल्कुल नहीं होता है। विलम्बिका में शूल मीठा-मीठा होता है। इसी कब्ज को जब अधिक दिन हो जाते हैं तब "अर्शांसि षट्विधानि" ६ प्रकार का अर्श रोग हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है—शुष्कार्श और रक्तार्श। गुदावलियों के आधार पर भी अर्श दो प्रकार के माने गये हैं—बाह्यार्श और आभ्यन्तरीयार्श"। तथा चर्मकील (मस्सा) तीन प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज और कफज।

जब मल बहुत पुराना होता रहता है तो उसमें कीड़े भी पड़ जाते हैं, जिसे कृमि रोग कहते हैं। इस प्रकार के मल से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

अतः आवश्यक यह है कि प्रत्येक वर्ष शरीर की शुद्धि जैसा पूर्व कह चुके हैं कर लेनी चाहिए। अथवा समय-समय पर जब आवश्यकता हो रेचक औषधि लेनें में कोई हर्ज नहीं है। मिश्री १॥ तोला, सौंफ ४ माशा, सनाय ४ माशा, हर्रे का बकुल १ तोला, मुनक्का २ तोला, अंजीर २ नग, उन्नाव २ नग लेकर डेढ़ पाव पानी में औंटाकर १० तोला शेष रहने पर छान कर पी लेवें, कब्ज दूर करेगा। कृमियों के लिये इसी में ढाक के बीज ३ माशा, कबीला ३ माशा और कुकरौंदा ६ माशा, (बरसाती) को डाल औंटा लो, छानकर ३ दिन पीने से ही कृमि दूर हो जाते हैं।

बवासीर के लिये—नीम की गिरी, रसौत, रीठे के छिलका बराबर मात्रा में लेकर तथा बावली घास तीनों से दुगुनी लेवें और पीस कर गोली बना लें, दोनों प्रकार की बवासीर दूर होगी। मस्सों पर बाम लगाया करें।

(द) पदार्थ-परिचय :

जगन्नियन्ता जगदाधार जगदीश्वर ने त्रिगुणात्मक सृष्टि का निर्माण किया है। इसमें जितने भी पदार्थ हैं, सब त्रिगुणात्मक ही हैं। गुण माने सत्व, रज और

तम। इन्हीं पदार्थों के द्वारा वैद्यजन यावन्मात्र रोगों की चिकित्सा केवल गुणों के आधार पर ही करते आये हैं। दैनिक जीवन में जो-जो पदार्थ प्रतिदिन काम में आते हैं, उन पर कुछ विचार कर प्रस्तुत लेख में उपस्थित कर रहा हूँ। शाक मनुष्य प्रतिदिन ही व्यवहार करता है, अतः—

बथुआ—अग्निदीपक, पाचक, रुचिकारक, हल्का और दस्तावर है; तिल्ली, रक्तपित्त, बवासीर और कीड़ों का नाश करता है।

चौलाई—शीतल, मलमूत्र निकालनेवाली है; पित्त, कफ और रक्त-दोष-नाशक है।

पालक—शीतल, कफकारक, दस्तावर, मेद, पित्त और खून विकारनाशक है।

मूली—पाचक, हल्का, रुचिकारक, गर्म है। तेल में भुना हुआ त्रिदोष-नाशक है।

परवल—पाचक, हृदय को हितकारी, वीर्यवर्धक, हल्का, अग्निदीपन करने-वाला, गर्म है—खाँसी खून-विकार, बुखार, त्रिदोष और कीड़ों का नाश करता है।

पत्ते—पित्तनाशक, फल-त्रिदोषनाशक है।

तोरई—शीतल, मीठी, कफ, वादी करनेवाली, पित्तनाशक, अग्नि-दीपक है।

सेम—शीतल, वादी, बलदायक, दाहकारक, वात-पित्त को शमन करती है।

बैंगन—"भटा एक को पित्त करै, करै एक को वाय" यह कहावत प्रसिद्ध है।

करेला—शीतल, मलभेदक, दस्तावर, कड़वा होता है। वादी नहीं करता। ज्वर, पित्त, कफ, खून-विकार, पीलिया, प्रमेह, कीड़ों को दूर करता है।

गाजर—अग्निदीपक, रक्त-पित्त, बवासीर, कफ, वादी को दूर करता है।

आलू—रूखा है, कफ और वादी करनेवाला है। वीर्यवर्द्धक, बलकारक है, अग्नि को भी कुछ बढ़ाता है।

केले के फूलों का साग—चिकना, मीठा, भारी, शीतल, कसैला, वादी, पित्त, रक्त-पित्त और क्षय रोगनाशक है।

आम—यह फल जगत प्रसिद्ध है। इसके समान दूसरा फल नहीं है। यही एक फल विधाता ने बनाया है कि बार-बार मुंह में ले जाकर लौटा लाते हैं और ले जाते हैं, फिर भी उगला हुआ नहीं कहते। लाख-लाख धन्यवाद है उस परब्रह्म परमेश्वर को जिसने हमारे भारतवर्ष में आम जैसा अमृत फल पैदा किया है। इस वृक्ष की प्रत्येक वस्तुएँ काम में आती हैं। कच्चा फल—इसको कैरी कहते हैं, यह खट्टी होती है, इसीसे अमचूर बनता है। खट्टा, कसैला, स्वादिष्ट, दस्तावर, कफ-वादी को जीतता है, तरकारियां खूब मजेदार बन जाती

हैं—पक्का आम—मीठा, वीर्यवर्द्धक, चिकना; बलकारक, सुखदायक, हृदय को प्यारा, रंग को साफ करनेवाला है। अमावट—पके रस को कपड़े पर डाल सुखा लेते हैं, ज्यों-ज्यों रस सूखता है, त्यों-त्यों उस पर रस डालते जाते हैं, इसी प्रकार बार-बार रस डालने से रोटी-सी जम जाती है। दस्तावर, रुचिकारक, हल्का, प्यास, वमन, पित्तनाशक है।

फूल—इसे मौर कहते हैं। रुचिकारक, ग्राही, वातकारक है। कफ, पित्त, प्रमेह और दुष्ट रुधिरनाशक है।

गुठली—यह बीज है। कसैली, कुछ खट्टी और मीठी होती है। वमन, अतिसार, हृदय की जलन को दूर करती है।

पत्ते—रुचिकारक, कफ और पित्त का नाश करनेवाले और मंगल-रूप होते हैं। उत्सवों पर डोरियों में बांध दरवाजों पर लटकाते हैं। मन प्रसन्न करते हैं।

विशेष—आम अधिक खाने से मन्दाग्नि, विषम ज्वर, दस्त, कब्ज हो जाते हैं, अतः सोंठ को पानी के साथ खाने या जीरा, काले नमक के साथ खाने से आम्र-दोष दूर होता है।

बेल—बेल कच्चा ही गुणकारक है। पक्का बेल—तीनों दोषवाला, अग्निमन्द करनेवाला है।

दाख, बेल, आँवला, हरड़ आदि फल सूखे हुए अधिक गुणदायक होते हैं।

जामुन—स्वादिष्ट, भारी, रुचिकारक है। बेर—शीतल, दस्तावर, वीर्यवर्द्धक है।

नीबू—दीपन-पाचन, पेट-दर्द को दूर करता है, मन्दाग्नि को दूर करता है। कीड़ों को मारता है।

शहतूत—पक्का शहतूत, भारी, स्वादिष्ट, शीतल, पित्त, वादीनाशक है।

अनार—त्रिदोषनाशक, तृप्तिदायक, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, बुद्धिवर्द्धक है।

हरड़—यदि आप सदा नीरोग रहना चाहते हैं, तो हरड़ सेवन कीजिये। शास्त्र में लिखा है कि बच्चे पर माता कुपित हो जाती है—"नप्रकुप्यति हरीतकी" किन्तु हरड़ सेवन करनेवाले पर नाराज नहीं होती।

(क) ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ, (ख) वर्षा में सेंधा नमक के साथ, (ग) शरद ऋतु में आँवलों के साथ, (घ) हेमन्त में सोंठ के साथ (ड) शिशिर में पीपल के साथ और (च) वसन्त में शहद के साथ।

आक दुग्ध—आक भारतवर्ष की प्रसिद्ध बूटियों में से है, ईश्वर ने इसमें प्रत्येक भाग में अत्युत्तम गुण रक्खे हैं, दूध के वर्णन में—गरम, खुश्क और विषाक्त है। अति विरेचनकारी है, १० माशा आक का दूध प्राणघातक है।

सर्प-विष—दंश स्थान या आक का दूध लगावें, जब तक विष रहेगा, दुग्ध रचता रहेगा, जब रचना बन्द हो, तब समझो कि विष नहीं रहा।

भिड़-बिच्छू—दंश स्थान पर आक का दूध लगावें।

कुत्ता-विष—दंश-स्थान पर यही दुग्ध गुणकारी है।

दुर्भाग्य से हम लोगों की कुछ ऐसी प्रवृत्ति बन गई है कि सात समुन्दर पार से आकर्षक पैकटों में बन्द होकर आनेवाली और स्वास्थ्य का सफाया कर देनेवाली औषधियों पर हमारी ऐसी अगाध श्रद्धा और विश्वास हो गया है कि हम अपने घर में पड़े हीरों को नहीं पहचानते। सोंठ—अदरक हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाली वस्तु है। चीनी और भारतीय बहुत पुराने जमाने से इसका प्रयोग मसालों और चिकित्सा में करते आये हैं।

यह रुचिकारक, पाचक, आमवातनाशक, कटु रस युक्त लघुपाकी, वमन, श्वास, खाँसी, शूल, हृदय रोग, श्लीपद, शोथ, बवासीर, आफरा, पेट की वायु आदि को दूर करती है।

अदरक मल को दूर करने वाली—पाक में गुरु, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, अग्नि-दीपक, वात, कफ को नष्ट करनेवाली, सोंठ के सब गुण अदरक में होते हैं। उष्णता अधिक होने से सोंठ—भोजन रसों को आँतों की झिल्ली द्वारा शोषण या ग्रहण कराती है और जलीयांश को सुखाकर पतले मल को गाढ़ा करती है।

अफारे और अजीर्ण के लिये सोंठ ५ रत्ती, अजवाइन ३० रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण १५ रत्ती, भोजन के बाद प्रतिदिन यह चूर्ण प्रयोग किया जावे, तो अजीर्ण का तो नाम ही न रहेगा कि अजीर्ण भी कोई रोग होता है।

उदर रोग में—गजपिप्पली और सोंठ के चूर्ण को दूध के साथ देने से लाभ होता है। जिन लोगों को दूध हजम न होता हो या पीते ही टट्टी जाना पड़ता हो तो सोंठ डाल का दूध औंटावें या सोंठ की फांकी करें, दूध हजम हो जायगा।

अफारे और शूल के लिये—आधी छटाँक जौ कुट सोंठ को १२ छटांक पानी में उबालो, जब आधी छटांक रहे अफारे में पिला दो, तुरन्त ही लाभ होगा।

ग्रहणी रोग में—सोंठ और कच्चे बेल की गिरी के कल्क को मसूर के यूष के साथ पीने से ग्रहणी नष्ट होती है।

आँव बन्द करने के लिये—गुड़ और सोंठ की बनाई गोलियां लाभ करती हैं।

सोंठ अग्नि को प्रबल करती है, आम दोषों को पचाती है, गरम होने से द्रव पदार्थ को सुखाती है। पेट में ऐंठन और योनि शूल को भी शान्त करती है।

गर्भस्राव को रोकने के लिये—सोंठ, मुलहठी, देवदारू को दूध के साथ पिलावें।

बच्चा पैदा होने के बाद—सौभाग्य शुंठी पाक देना चाहिए।

दूध शोधन में—सोंठ का कषाय बना कर पिलाना।

कफ में—अदरक का टुकड़ा जरा-सा नमक लगाकर चूसने से कफ निकल आता है।

जुकाम में—अदरक बहुत ही लाभ करता है। अदरक, काली मिर्च, तुलसी, सेंधा नमक, गेहूँ के आटे की भूसी पानी से खूब अच्छी तरह धोकर केवल छिलका ही बाकी रहे आटा सब निकल जाय, डेढ़ पाव पानी का आधा पाव शेष रहने पर १ दिन प्रातः-सयं पीवें और ओढ़कर सो जावें, बस जुकाम ठीक ही हो जावेगा।

प्राचीन समय में घरों में बहुत से रोगों की चिकित्सा केवल त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) से ही कर लेते थे। इन छः पदार्थों में बड़ी भारी शक्ति निहित है। पीपल को संस्कृत में पिप्पली कहते हैं। यह दो प्रकार की है—छोटी और बड़ी, अधिकतर छोटी पीपल को लोग ज्यादा काम में लाते हैं—गुण-धर्म समान से ही हैं। पीपल कटु रस युक्त होती है, परन्तु इसका विपाक मधुर है। दोषों को शमन करती है, किन्तु अतियोग होने से दोषों की प्रकोपक भी है, ऐसा भी किसी आचार्य का मत है, किन्तु वर्तमान पिप्पली योग से मालूम होता है कि अतियोग भी कोई नहीं होता यह एका आचार्य का मत है। अनेक द्रव्यों के संयोग होने से पिप्पली उनके गुणों को ग्रहण कर परिणाम में गुण-वृद्धि करनेवाली है। यह योगवाही होने से कटु (शुक्र क्षय भारी) होते हुए भी वृष्य योगों में उपयोगी होती है। योगवाही होने से ही ज्वर, गुल्म, कुष्ठ आदि दाहक योगों में पिप्पली ज्वरादि को शान्त करती है।

वह देश भी धन्य है कि जिस देश में ऐसे-ऐसे वृक्ष उत्पन्न होते हैं, जिसके प्रत्येक भाग काम में आते हैं, उनमें से एक का वर्णन हम यहाँ किये देते हैं :—

यह लौंग, जावित्री, जायफल, तेजपात, तज, दालचीनी एक ही वृक्ष की वस्तुएँ हैं। तने की छाल को—तज, जड़ की छाल को, दालचीनी पत्तों को, तेजपात फल को—जायफल फूल को लौंग व जावित्री कहते है। इसके प्रत्येक द्रव्य सुगन्धित और मनुष्य के बड़े ही काम आनेवाले हैं।

(१) खाँसी में लौंग से बनी लवंगादि बटी काम में आती है।

(२) पान में रखकर जावित्री खाने से सर्दी का विकार तथा प्रसूति विकार दूर होता है।

(३) पेट-दर्द व अतिसार आदि में जायफल बड़ा उपयोगी है।

(४) कहीं भी चोट लग जाय, तज को पीस कर लगा देने मात्र से ही चोट दूर हो जाती है और सूजन भी दूर हो जाती है।

दालचीनी तो अनेक कामों में आती है। गरम मसाले में लौंग, जायफल, दालचीनी, तेजपात के पड़ने से नं० १ मसाला तैयार होता है, जो दाल, साग आदि में स्वाद ही नहीं देता, वरन् अनेक बीमारियों को दूर करने में सक्षम होता है।

बच्चों के अतिसार—जायफल और आम की गुठली घिसकर पानी में घोल पिला देते हैं जरा-सा काला नमक डालकर। बस रोता हुआ बच्चा पिलाने से ठीक हो जाता है।

चाय में तेजपात, दालचीनी और लौंग डालकर शीतकाल में लोग बड़े चाव से पीते हैं, और विशेष आनन्द लेते हैं।

मसूड़ों के दर्द में—दन्त वेदना के लिये दालचीनी का तेल व्यवहार किया जाता है तथा लौंग का तेल भी लगाते हैं। टुथ पाउडर (दन्त मंजन) में दालचीनी, लौंग, जावित्री अपना विशेष महत्व रखते हैं।

साथ-ही-साथ काली मिर्च का भी योग इन्हीं के साथ में वहुतायत से होता है। इसका नाम गोलमिर्च या शीतल मिर्च भी है। यह भी गरम मसाला में पड़ती है, ठंडाई के काम में आती है, लाल मिर्च के स्थान पर इसका सेवन किया जाय तो रोगोत्पन्न नहीं होता, वल्कि रोगनाशक है। जुकाम के लिये तो यह अनुपम वस्तु है। यदि जुकाम में दूध हानि करता हो और आपको दूध के विना न रहा जाता हो तो आप ११ काली मिर्च चबा कर दूध पी लीजिये, हानि नहीं होगी। काली मिर्च का नस्य वड़ा ही तेज होता है, हजारों छींकें आती हैं। जैसे भोजन विना नमक के नहीं अच्छा लगता, ठीक उसी प्रकार से काली मिर्च के विना सारा भोज्य पदार्थ चाहे वह भोजनालय की वस्तु हो या चूर्ण, चटनी इत्यादि हो, सूना ही सूना नजर आता है। अतः काली मिर्च का भी इस संसार में बड़ा ही अस्तित्व है।

(घ) कुछ आवश्यक जानकारी :

(१) नवीन ज्वर में तीव्र वायु का सेवन, दिन में अधिक समय तक शयन, स्नान, तैल मर्दन, क्रोध और परिश्रम हानिकर है। जव तक यह ज्वर शरीर में रहे भोज्य पदार्थ (खाने को) कुछ भी नहीं देना चाहिए।

शमनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम्।
वमनं कफनाशाय ज्वर नाशाय लंघनम्॥

यदि ज्वर दूर करना हो तो लंघन करना उपयुक्त है। तथा शीतल जल भी

नहीं पीना चाहिए, जल गरम करके ठण्डा किया हुआ, आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा देते रहना चाहिए।

(२) पुराने ज्वर में रोगी को घी और दूध अवश्य देना चाहिए। अतः "सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषजमुत्तमम्" इस वचन से उत्तम भेषज माना है। यदि वमन, विरेचन, लंघन आदि से जीर्णज्वर ठीक न हुआ हो, तो घृत पान, दुग्ध पान हितावह है।

(३) मियादी ज्वर में शामक औषधि देवें। विकार को पाचन करनेवाली तथा शोधन औषधि देनी चाहिए।

(४) चातुर्थिक (चौथय्या) व तिजारी ज्वर वाले का ज्वर दूर हो जाने के २-४ मास तक गुड़वाला पदार्थ नहीं देना चाहिए, अन्यथा ज्वर पुनः आ जाता है।

(५) त्रिदोषज ज्वर में घृत कदापि नहीं देना चाहिए एवं मांस या भात देना भी हानिकारक है। यदि सन्निपात में दाह हो, तो भी शीतल जल नहीं पिलाना चाहिए। यदि प्रस्वेद (पसीना) आता हो तो सत्वर पसीना बन्द करने की चिकित्सा करनी चाहिए अन्यथा रोगी शीत में आ जाता है। यदि तन्द्रा हो तो तीक्ष्ण नस्य आदि औषधियों द्वारा चेतना लाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि कर्ण शोथ हो गया हो, तो जोंक आदि उपचारों से तुरन्त सूजन को दूर करना चाहिए। सन्निपात में पहले वात, कफ को तदनन्तर वात-पित्त को दूर करना चाहिए।

(६) ज्वर चले जाने के पश्चात् जब तक शरीर में शक्ति न आवे तब तक व्यायाम, मार्ग गमन, गरिष्ठ भोजन, सूर्य-ताप या अधिक वायु का सेवन और ठंडे जल से स्नान करना हानिकारक है।

(७) कालरा (विसूचिका) में प्यास अधिक लगती है, अतः १-१ तोला बर्फ का जल देवें अथवा सौंफ का अर्क दें। पेशाब बन्द हो तो मूत्रेन्द्रिय में कपूर रक्खें और पेडू पर कलमी शोरा रख ऊपर से पानी की बूँदें टपकावें। यदि पानी न पचे तो इलायची बड़ी २, लौंग नग २, अदरक १ तोला, मिश्री ४ तोला, आधा सेर पानी में औंटावें, १ तोला स्याहतरा भी डाल लेवें। जब १० तोला पानी जल जाय तब उतार कर छान लें और गरम-गरम ही पिलाते रहें। कय बन्द होगी और प्यास भी शान्त होगी। अर्क कपूर अवश्य देना चाहिए। संजीवनी वटी प्याज के अर्क के साथ बार-बार देते रहें।

(८) आम्लपित्तवाले रोगी को भोजन के बीच में या भोजनानन्तर तुरन्त ही अधिक जल पीना, शाक अधिक खाना, खट्टे पदार्थ खाना, गरम-गरम भोजन,

चाय आदि पदार्थ हानिकर हैं। दाहयुक्त अम्ल पित्त में वमन-विरेचन के शोधन किये बिना औषधि देना लाभदायक नहीं।

(९) रक्तपित्त के रोगी को धूम्रपान आदि व्यसन और पित्तवर्द्धक आहार-विहार सर्वथा त्याज्य हैं। इस रोग में पेठा, आँवला, दूब (दूर्वा) गिलोय, हितकारी हैं।

(१०) कृमिरोग में मधुर पदार्थ, गुड़, दूध कच्चा तथा तेल का त्याग करें।

(१२) सगर्भा स्त्री को अफीम, जमालगोटा और एलुआवाली तीक्ष्ण औषधियाँ नहीं देनी चाहिए।

(१३) सूतिका ज्वर में और सन्निपात रोगी को घी खिलाना अति हानिकर है।

(१४) यकृत् की शिथिलता से उत्पन्न मन्दाग्नि और बहुमूत्र के रोगी को घी ज्यादा नहीं देना चाहिए। मन्दाग्नि के होने पर घी का पाचन योग्य समय में नहीं होता और बहुमूत्र होने से मत्रोत्पत्ति में अधिक कष्ट होता है और पेशाब के साथ घृत का कुछ अंश भी निकलता है।

ब्लड प्रेसर :

(१) सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि यह रोग क्यों हुआ है ? यानी उसके कारण का विचार करें। रोगी को शहरी वायुमण्डल से दूर किसी शान्त और शीतल स्थान में रक्खें। स्त्री-सहवास, परिश्रम, क्रोध, मिर्च-मसाले आदि रक्त में तेजी लानेवाली वस्तुओं से परहेज रक्खें। रोगी के मन और मस्तिष्क को पूर्ण शान्त रक्खें। बकरी का दूध, तक्र, टमाटर जैसी शीघ्र पचनेवाली वस्तुएँ रोगी को खाने को दें। फलों के आधार पर रहने से शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ होता है। धूल और धुआँ के वायुमण्डल से रोगी की दशा बिगड़ती है। उत्तेजना पैदा करने वाले दृश्य, पुस्तक और वार्त्तालाप से पूरी सावधानी रखनी चाहिए। शान्त रस की पुस्तकें, शान्त संगीत और शान्त स्वच्छ समीर (वायु) रोगी के लिये बहुत ही उपयुक्त हैं।

हृदय रोग :

(२) हृदय सम्बन्धित सभी रोगों में रोगी के दिल और दिमाग को पूर्ण शान्त रखना चाहिए। स्वच्छ वायु में रहना चाहिए। सात्विक साहित्य का अध्ययन और दिल को प्रसन्न करनेवाली वस्तुओं से लाभ पहुँचता है।

खाना-पीना नियमित रहना चाहिए। आवश्यकता हो तो वमन-विरेचन

भी करा दें। शीघ्र पचनेवाली वस्तुएँ खाने को दें। पुराने लाल चावल, आम, अनार, केले, परवल, करेला, अंगूर और दूध अच्छे रहते हैं। मूंग की दाल और धनियां की चटनी भी हितकर है। हृदय-स्पन्दन की कमी में कभी-कभी शराव भी पी सकते हैं। रोगी को विशेष उठना-बैठना उचित नहीं है।

श्वास :

वमन, विरेचन, स्वेद और औषधियों के धुएँ लेना—ये चारों क्रियाएँ आवश्यकता के अनुसार रोगी के लिये लाभप्रद होती हैं। पूर्ण विश्राम दें। पुराना घी, वकरी का दूध, दाख, लशुन, परवल, चौलाई, वथुआ दें। पूर्व दिशा की वायु से वचें। ठंडी हवा और ठंडे पदार्थों से रोगी को वचावें। मछली, कन्द, सरसों तथा रूखी और भारी वस्तुएँ रोगी को न दें। रात्रि जागरण और मानसिक विचारों से रोगी को वचाना, तम्वाकू पीना वहुत हानिकारक है।

जुकाम—इसमें शीतल तथा गर्म खुश्क चीजें व औषधि नहीं दें। ऐसा उपाय करें जिससे जुकाम रुके नहीं और यदि रुक गया हो तो वह जाये। पूर्वी हवा न लगनी चाहिए। दूध व चिकने पदार्थ नहीं देने चाहिए। गरम मसाले नहीं देना चाहिए।

खाँसी—प्रथम यह ज्ञान होना आवश्यक है कि यह किन कारणों से हुई है—उसका उपचार करना परमावश्यक है। काली खाँसी में परिश्रम, व्यायाम और धूप से वचें। हल्की-सी कै भी करा दें। कब्ज होने पर पेट साफ करा दें। दिन में सोना नहीं चाहिए। चिकने और मीठे पदार्थ, दूध-दही, भारी भोजन, खीर, पूरी और बीड़ी-सिगरेट, हुक्का ये सभी चीजें रोग को बढ़ाती हैं।

मन्दाग्नि—मन्दाग्नि का अर्थ है परिपाक शक्ति का वैलक्षण्य होना। भोजन पर भोजन नहीं करना चाहिए। दिमागी काम करनेवालों को यह रोग अधिक होता है। इस रोग में नियमों का पालन किये विना रोग से छुटकारा कोई पा नहीं सकता। जलवायु को वदलते रहना चाहिए। भोजन हल्का देना चाहिए। दूध, दही का भोजन सर्वोत्तम है। पपीता का साग व पक्का पपीता खाना चाहिए। दाँतों की परीक्षा भी करा लेना चाहिए। क्योंकि दन्त रोग के कारण भी मन्दाग्नि हो जाया करती है। भोजन उतना नियमपूर्वक ही करना चाहिए, जितना पचा सकें। हिंग्वष्टक चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण खाना लाभदायक है।

मधुमेह—यह दो प्रकार का होता है—मधुमेह, मूत्रमेह। पेशाब के साथ चीनी जैसा मधु पदार्थ निकलता है उसे मधुमेह और केवल पेशाव अधिक होने को मूत्रमेह या मूत्रातिसार कहते हैं। इस रोगी को जहाँ तक हो दिमागी काम करना

छोड़ देना चाहिए। गुड़मार बूटी लाभदायक है। मीठे फल भी त्याज्य हैं। घी बहुत कम खाना चाहिए। नये चावल, मैदा की रोटी आदि नहीं खानी चाहिए। भूसी सहित आटे की रोटी खाना लाभदायक है। छाछ पीना चाहिए। मक्खन निकाला दूध पीना चाहिए। शीरीरिक परिश्रम आवश्यक है। घूमना अच्छा है।

रक्त-दोष—रक्त मनुष्य का जीवन है। इसमें दोष आने से फोड़ा, फुंसी, चकत्ते, कोढ़, खाज, खुजली आदि रक्त विकार हो जाते हैं। रक्त शुद्धि के लिये जुलाब प्रधान दवा है। खट्टे नमक वाले तथा कड़वे पदार्थ नहीं खाना चाहिए।

(न) आहार-विहार सम्बन्धी साधारण ज्ञान :

(१) **शीतल जलपान :**—पित्त, गर्मी, दाह, मूर्च्छा, विष विकार, रक्त विकार, मदात्यय, तमक श्वास, श्रम, वमन और उर्ध्व रक्त पित्त आदि रोगों में अन्न पच जाने पर ही ठंढा जल पिलाना लाभदायक है। इसके विपरीत घृतपान या तैल पान के पश्चात शीतल जल पीना हानिकारक है। सन्निपात में शीतल जल पीना या स्नान करना अति हानिकारक है।

(२) **उष्ण जलपान :**—बवासीर, जुकाम, अफारा, प्रमेह, पाण्डु, पार्श्व-शूल, वात रोग, मलग्रह, मलावरोध, नवीन ज्वर, विरेचन, गुल्म, क्षय, मन्दाग्नि, अरुचि, नेत्र रोग, संग्रहणी, कफ प्रधान रोग, श्वास, कास, फोड़ा-फुन्सी तथा हिचकी आदि में गर्म जल को कुछ ठंढा करके पिलाने से लाभ होता है। रात्रि का उबाला जल प्रातः तक तथा प्रातः का उबाला जल सायंकाल तक भी उपयोग में लिया जा सकता है। इसके विपरीत रक्त पित्त, मूर्च्छा, रक्त विकार और पित्त प्रधान रोगों में उष्ण जल उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

(३) **अधिक जलपान:**—एक साथ अधिक जल पीना भी हानिकर हो जाता है तथा अनेकों रोगों के जन्मदाता "आम" को पैदा कर देता है।

(४) **अल्प जलपान :**—जुकाम, अरुचि, मन्दाग्नि, क्षय, मुंह में जल आना, उदर रोग, कुष्ठ, तीक्ष्ण, नेत्र रोग, नूतन ज्वर, व्रण और मधुमेह में थोड़ा-थोड़ा आवश्यकतानुसार पिलाते रहना चाहिए। "हैजा" में सौंफ का उबाला हुआ जल ठंडा करके या वर्फ का जल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पिलाना चाहिए।

(५) **मधुर जलपान :**—शक्कर मिला जल कफ को बढ़ाता है तथा वायु को घटाता है। मिश्री मिला जल दोषनाशक तथा शुक्रल है। गुड़ मिला जल मूत्र-

कृच्छ्रघ्न पित्तकर तथा कफवर्द्धक है। किन्तु पुराना गुड़ मिला जल पित्तनाशक तथा पथ्य माना गया है।

(६) **उषः जलपान**—सूर्योदय से पूर्व शौच जाने से पहले जल-पान करना हितकारक है। किन्तु कफ प्रकोप, मन्दाग्नि और नूतन ज्वर आदि रोगों में उषः पान नहीं करना चाहिए।

(७) **जलपान निषेधः**—शौच जाने के पश्चात्, सूर्य के ताप में घूमकर विना विश्रान्ति लिये और व्यायाम या शारीरिक परीक्षा करने पर, शरीर पर पसीना होने के समय तथा भोजन के प्रारम्भ में जलपान हानिकारक है।

(८) **दुग्ध निषेधः**—तीव्र आम प्रकोपसह नूतन ज्वर, मन्दाग्नि, आम वृद्धि, कुष्ट, उदर शूल, कफ वृद्धि और कृमि आदि रोगों में दुग्ध हानिकारक है। नया उपदंश, सूजाक आदि व्याधि के समय अधिक दुग्ध पीना या भैंस का दूध पीना हितकर नहीं।

(९) **दूध का उपयोग :**—जीर्णज्वर, निर्बलता, कब्ज, लो ब्लड प्रेसर, मस्तिष्क शूल, वातज, अर्श तथा वायु विकार आदि पर समय-भेद से दुग्ध अमृत तुल्य सिद्ध होता है। वैसे इनसे इतर भी आयुर्वेद ने दूध को जीवन रूप माना है। दूध की उपयोगिता के सम्बन्ध में पुस्तक में अन्यत्र भी लिखा जा चुका है।

(१०) **दूध के प्रतिकूल पदार्थ :**—सेंधा नमक को छोड़कर अन्य क्षार, आँवले को छोड़ कर अन्य खटाई, गुड़, मूंग, मद्य, मत्स आदि भोजन—इनमें से किसी के साथ दुग्ध का सेवन नहीं करना चाहिए।

(११) **तक्र निषेधः**—रक्त पित्त, अम्ल पित्त, कफ वृद्धि, मूत्र में जलन, क्षत, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तृषा, रक्त पित्त और अम्ल पित्त रोगवाले तथा दुर्बल मनुष्य को तक्र नहीं पिलाना चाहिए।

(१२) **दही निषेधः**—रक्त पित्त, अम्ल पित्त, कफ वृद्धि, क्षय, सूजाक, अस्थि भंग, पीनस, उपदंश, नेत्र दाह, नेत्र लाली, पित्तज मेह, अश्मरी, मूत्र कृच्छ्र, मूत्राघात, मदात्यय, कुष्ठ, वात रक्त, मूत्र रोग जनित संधिवात, इन व्याधियों से पीड़ित रोगी को दही नहीं लेना चाहिए।

शरद, ग्रीष्म और वसन्त ऋतु में दही प्रतिकूल एवं रात्रि के समय में भी दही का सेवन निषिद्ध है। दिन में यदि सेवन करना हो तो नमक, जल, घृत, मिश्री, शहद, मूंग का यूष अथवा आँवले का चूर्ण, इनमें से किसी अनुकूल वस्तु का सेवन प्रकृति और समयानुसार करना चाहिए।

(१३) घृत निषेध:—ज्वर सहित राजयक्ष्मा रोगी, दूध पीनेवाला वालक, वृद्ध रोगी, कफ वृद्धि, मलावरोधक के रोगी, आम युक्त रोगी, जीर्ण ज्वरी, मन्दाग्नि वाले बहुमूत्र रोगी, प्रमेह रोगी और अजीर्ण जनित निर्जन्तुक विसूचिका रोगी इन सबको घी थोड़े-थोड़े परिणाम में लेना चाहिए।

(१४) अदरख का निषेध :—कुष्ठ, पाण्डु, मूत्र कृच्छ्र, सूजाक, रक्त पित्त, वृष, शुष्क कास, दाह, निद्रानाशक, इन रोगों में ग्रीष्म और शरद ऋतु में तथा पित्त प्रधान प्रकृति वालों को अदरख का सेवन हानिकारक है।

(१५) शहद का उपयोग :—शहद रोगनाशक है। औषधि के साथ पुराना और रसायन गुण के लिये नया शहद कार्य में लाना चाहिए। शहद कुष्ठ, अर्श, कास, रक्त पित्त, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, कृमि, मेद, पिपासा, वमन, श्वास, हिक्का, अतिसार, कोष्ठवद्धता, दाह, क्षत और क्षय रोग में हितकारक है।

नोट :—उपरोक्त पेय पदार्थों की व्याख्या आयुर्वेदानुसार संक्षिप्त रूप से दी गई है। अतः विशेष परिस्थितियों में रोगी अपनी प्रकृति अनुसार कविराज महोदय के परमर्शानुसार उपयोग में लावे।

१७. पथ्यापथ्य विचार

प्रायः सभी समय में सर्वसाधारण को पथ्यापथ्य का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इस ज्ञान के बिना व्यक्ति को उतना ही कष्ट उठाना होता है, जितना कि फटी हुई बिवाईवाले को। तीव्र ज्वर में, बेहोशी में, अधिक प्यास के लगने पर तथा भूख लगने इत्यादि समय में क्या करें, जबकि बार-बार वैद्य को बुलाने में फीस को पैसे न हों।

पथ्यापथ्य का प्रभाव रोग और औषधि पर अवश्य ही पड़ता है। पथ्य से रोग निवृत्ति तथा औषधि का चमत्कारिक प्रभाव अपथ्य से रोग की असाध्यता तथा औषधि को दुर्गुण कहना होता है।

वर्तमान समय में पथ्य का अर्थ केवम भोजन ही समझा जाता है, किन्तु वस्तुतः बात यह नहीं है—"शरीर और मन के स्वास्थ्य के हेतु जो पदार्थ हितकर है, वही पथ्य है।" विस्तार से यों कह सकते हैं कि जिस आहार-विहार से शरीर और मन को शान्ति मिले वही पथ्य है।

सुन्दर और प्रिय वस्तु को देखने से चक्षु और मन प्रसन्न होता है, अतः वह वस्तु पथ्य है। व्यायाम से शरीर को लाभ और दन्तधावन (दातुन) से मुख परिशुद्धि ये दोनों ही पथ्य हैं।

अधिक मात्रा में भोजन करने से अथवा पर्युसित (वासी) पदार्थों (रोटी) के खाने से पेट-दर्द (उदर-पीड़ा) उठता है। गन्दे सिनेमा देखने से स्वप्नदोष (नाइट फाल) तथा मन विकृत होता है। अधिक पढ़ने से आंखों में अंधेरा आता है। ऐसी दशा में यह सब अपथ्य है।

सारांश यह है कि शरीर और मन को लाभ पहुँचाने वाला आहार-विहार पथ्य और हानि (नुकसान) पहुँचाने वाला आहार- विहार अपथ्य है।

एक ही वस्तु कालान्तर में या भिन्न परिस्थितियों में पथ्य या अपथ्य बन जाती है। जैसे—पूर्ण स्वस्थ अवस्था (तन्दुरुस्ती) में घृत सेवन पथ्य है, किन्तु ज्वरावस्था में वही घृत जो पथ्य है अपथ्य रूप धारण करता है। प्रमेह रोगी के लिये उत्तेजक पदार्थ जैसे प्याज, लशुनादि तथा उत्तेजक दृश्य (सिनेमा) आदि अपथ्य

हैं। किन्तु मानसिक क्लैव्य के रोगी के लिये पथ्य ही होंगे। नये (तरुण) ज्वर में दूध हानिकर है, तो जीर्णज्वर में लाभप्रद होता देखा गया है।

रोगी को सर्वदा पथ्य का पालन करना चाहिए। अर्थात् अपने अनुकूल आहार-विहार करना चाहिए। प्रतिकूल आहार-विहार से रोगी को लाभ नहीं होता। हाँ हानि अवश्य होती है।

"न च पथ्य विहीनानां भेषजानां शतैरपि"

पथ्यरहित रोगियों को सैकड़ों औषधियों से भी आराम नहीं होता।

धातुस्राव का रोगी जब तक संयम नहीं करेगा, तबतक उसे लाभ नहीं हो सकता। संयम से रहने पर बिना औषधि के भी लाभ होता देखा गया है। अतः पथ्यापथ्य ज्ञान के बिना मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता।

पथ्यापथ्य में—स्थान, जल, वायु, प्रकाश, परिचारक, उपचार, (प्राथमिक चिकित्सा), आहार, उपवास, नियम आदि का भी व्यवहार होता है। जैसे—

स्थान—कमरे की स्वच्छता और पवित्रता का प्रभाव रोगी के मनोभावों पर पड़ता है। साथ ही कमरे की अपवित्रता। (जिन्दगी) का कुप्रभाव भी रोगी के दिल व दिमाग पर पड़े बिना नहीं रहता, अतः कमरे को फेनाइल से धो देने और दुर्गन्धनाशक वस्तुओं की धूनी देने से रोग पैदा करनेवाले गन्दे कीटाणुओं का नाश हो जाता है साथ-ही-साथ रोगी के चित्त को प्रसन्न तथा शान्त करनेवाले चित्र तथा आदर्श वाक्य भी कमरे में लगा देने चाहिए, जिससे रोगी की विचारधारा अनुकूल रहे।

प्रकाश—प्रकाशहीन अंधेरे कमरे में प्राणवायु की कमी रहती है तथा रोगोत्पादक कीटाणुओं का जोर रहता है, अतः रोगी को पूर्व प्रकाश की अत्यन्त ही आवश्यकता है।

प्रकाश की संजीवनी शक्ति रोगोन्मूलन में सदैव समर्थ है। सूर्य-रश्मियों द्वारा रोगी स्वस्थ होते देखे गये हैं। हाँ यह ध्यान देने की बात अवश्य है कि प्रकाश की तीव्रता न होनी चाहिए [यानी अधिक तेज प्रकाश न होवे, जिसमें कमरा चमचमा जाये तथा धुआँ उड़ानेवाला प्रकाश भी नहीं होना चाहिए। सरसों आदि का तैल जो रोगनाशक हो, उसका दीपक या छोटे पावर का बल्व हो तो ठीक है।

वायु—शुद्ध वायु की परमावश्यकता रोगी के लिये है। यह भी देखना आवश्यक है कि खिड़कियों से जो वायु आ रही है, उसके निकट कूड़ा-करकट या गन्दी नालियों का कीचड़ तो नहीं सड़ रहा है. यह वायु चाहे खुली हो चाहे बन्द, जहरीला कार्य करती है। इस वायु के साथ गन्दे रोगों के कीटाणु भी रोगी की नासिका तक पहुँच जाते हैं। अँगीठी जलाकर कमरा बन्द करने से भी वायु बिगड़

जाती है, अतः इन बातों का भी ध्यान रखना उचित है। शुद्ध वायु के आने में रुकावट होने से कमरे की दूषित वायु भी नहीं निकल सकती, अतः कमरे में प्राण वायु (आक्सीजन) की बहुत कमी हो जाती है। वायु ठंडी है या गर्म इसका भी ध्यान रहना चाहिए तथा रोगी को सीधी हवा के झोंके न लगने पावें। पीपल के वृक्ष को पूजने का तात्पर्य ही यही है कि वह अशुद्ध वायु (कार्बन) ग्रहण करता है और शुद्ध वायु (आक्सीजन) देता है।

जल—पथ्य में शुद्ध जल का तथा अपथ्य में अशुद्ध जल का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जल पीने से पहले यह जान लेना चाहिए कि जिस स्थान का यह जल है वहाँ पर कोई गन्दगी तो नहीं है, क्योंकि स्थान के गुणावगुण जल में निहित होते हैं, जिनके द्वारा रोगोत्पादन या रोग निर्मल होते हैं। जल मात्र के पान करने से ही रोग शान्त होते देखे जाते हैं जैसे—सर्दी से उत्पन्न ज्वर में चतुर्थांश जल के पान से ज्वर निवृत्ति तथा वातज सन्निपात में षोड़शांश जल से सन्निपात निवृत्ति होती देखी जाती है। तथा सीताङ्ग सन्निपात में नाड़ी की गति क्षीण होकर पसीना आने लगे तब भी योग्य वैद्य केवल इसी जल के द्वारा काल में जाते हुए रोगी को जीवन दान देते हैं।

परिचारक—आयुर्वेद में चिकित्सा के चार पाद माने गये हैं—श्रद्धालु रोगी, सुयोग्य वैद्य, उत्तम औषध, विज्ञ परिचारिक। पीयूष पाणि वैद्य तथा उत्तमोत्तम औषधि होने पर भी विज्ञ परिचारक के बिना रोगी का रोग नहीं जा सकता।

मनुष्य को कभी-न-कभी रोगी होना ही पड़ता है और रोगी की दशा में उसे उचित परिचारक की परमावश्यकता होती है। परिचारक—संयमी, साहसी, प्रसन्न चित्त तथा आलस्य रहित होना चाहिए। रोगी के सुख-दुख व जीवन का सारा दायित्व इसी एक व्यक्ति पर होता है। इस दायित्वपूर्ण कार्य-सम्पादन करनेवाले को ही परिचारक कहते हैं।

उपचार—उपचार के दो भेद हैं, (१) रोगोपचार, (२) दुर्घटना जनित उपचार।

रोगोपचार में—आँखों में दवा डालना, घाव की मरहम पट्टी करना, मालिश करना, शारीरिक ताप (टैम्प्रेचर) देखना, सेंक करना, वस्ति कर्म (एनिमा) देना आदि हैं।

द्वितीय उपचार यानी दुर्घटनाजनित उपचार में—सर्पदंश में, मुर्गे के बच्चे की गुदा को दंश स्थान पर तेज धारवाले शस्त्र से काट कर लगाना।

आग से जलना, पागल कुत्ते का काटना, चूहा, बर्रे काटना, फांसी लगाना, जल में डूबना, मकड़ी फिरना, विषम क्षण आदि हैं।

आहार—समयानुसार आहार करना पथ्य है। असमयानुसार द्रव्यभोज्य अपथ्य है। समय से देश, काल, पात्र तथा रोग का ग्रहण करना। जब जैसा देखे वैसा ही उचित आहार पथ्य होता है, विपरीत अपथ्य।

दो परस्पर विरोधी पदार्थ भी अपथ्य होते हैं। जैसे—घृत सेवन के अनन्तर जल पीना। यह श्वास नलिका में विकार पैदा करता है। खीर खाकर छाछ पीना। यह तत्काल ही रोगी बनाता है। मधु (शहद) और घृत का समान-भाग में सेवन—आमाशय में विकार उत्पन्न करता है।

ऐसे विरोधी पदार्थों के सेवन से तत्काल कोई हानि नहीं प्रतीत होती, किन्तु कालान्तर में इसका दुष्परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है। दूध के साथ केवल आम्र फल को छोड़कर अन्य फलों का सेवन। चावलों के साथ सत्तू, गुड़ और उड़द, दूध और दही, मकोय और गुड़, बड़हल और उड़द, कबूतर के मांस के साथ प्याज, मछली के साथ दूध, दही और केला, मूली के साथ दही तथा शराब, मांस-मछली का एक साथ सेवन करना हानिप्रद यानी अपथ्य होता है। कुछ पदार्थ स्वभाव से अपथ्य हैं, "कुपथ्यां बदरी फलम्" बेर स्वभाव से अपथ्य है।

इन विरोधी पदार्थों के सेवन से आमाशय से सड़ाँद उत्पन्न होती है तथा रक्त विकार होकर रक्त पित्त, कुष्ठ, पाण्डु, वमन आदि असाध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी तो विरोधी पदार्थों से रासायनिक विष उत्पन्न हो जाता है, जिससे तत्काल मृत्यु तक हो जाती है।

अतः पथ्यापथ्य का ज्ञान प्रत्येक प्राणी को हर संभव उपायों से प्राप्त करना अत्यावश्यक है; जिसे बड़े पुण्यों से प्राप्त हुआ यह मनुष्य जीवन सुखपूर्वक व्यतीत किया जा सके। नहीं तो यह शरीर "शरीरं व्याधि मन्दिरम्" व्याधियों (रोगों) का घर बन जाता है। बार-बार रोगी होने से जर्जरित शरीर बहुत जल्दी जीर्ण-शीर्ण गृह की तरह ध्वस्त हो जाता है और बार-बार यानी जल्दी-जल्दी आवागमन में फँसकर कष्ट-पर-कष्ट पाता है।

आशा यही है कि पथ्यापथ्य पर ध्यान देकर आप अपने शरीर को सुदृढ़ और बलवान बनाइये। "वीर भोग्या वसुन्धरा" इस पृथ्वी को वीर पुरुष ही भोगते हैं, नहीं तो कुत्ता, सूअर भी जहाँ-तहाँ जैसा मिला भक्षण कर अपने उदर को भर लेते हैं। ऐसा मनुष्य को उचित नहीं है, क्योंकि यह ज्ञानवान प्राणी है।

—o—

१८. प्राणायाम व सरलासन

प्राणायाम :

भारतवर्ष योग के चमत्कारों का प्रधान केन्द्र रहा है। हमारे देश में सिंहासन पर बैठकर शासन करनेवाले राजाओं का महत्व नहीं, कुशासन पर बैठ कर आत्म-साधना करनेवाले योगियों का महत्व है। योग-साधना और सिद्धि हमारी मेधा और मनीषा का चरम उत्कर्ष है। योग-साधना का परम लक्ष्य है—निर्वाण, मुक्ति या निःश्रेयस।

प्राणायाम योग साधना का प्रथम सोपान है। हमारा यह देव-दुर्लभ मानव शरीर नीरुज, स्वस्थ, पुष्ट व सशक्त बने—प्राणायाम इसकी भूमिका है। उपनिषद् प्राण शक्ति के गौरव गीत से गुंजरित है। प्राण ही ब्रह्म है; इसके अभाव में हमारा शरीर कुछ नहीं, केवल जड़ शव-मात्र।

हमारी शरीर संघटना में दोनों—फुफ्फुस और हृदय का महत्वपूर्ण स्थान है। फुफ्फुस ही शुद्ध हवा ग्रहण कर हृदय को निर्मल बनाते हैं। फुफ्फुस जिनके बलिष्ठ हैं, समझ लीजिए उनका शरीर बलिष्ठ है। खुली व शुद्ध हवा में टहलने से तथा विधिपूर्वक प्राणायाम करने से फुफ्फुस बलिष्ठ होते हैं। प्राणायाम का अर्थ है—गहरी साँस लेकर, उसे रोकना और फिर निकालना। तंत्रसार में लिखा है—

> प्राणो वायुरितिख्यात आयामस्तन्निरोधनं।
> प्राणायाम् इतिख्याता योगिनां योगसाधनं॥

प्राण वायु का नाम है और आयाम उसका निरोध है, अर्थात् प्राण वायु को रोकना—प्राणायाम है।

प्राणायाम की महिमा से हमारे प्राचीन ग्रन्थ भरे हैं। प्राणायाम के बिना हमारी कोई भी साधना या धार्मिक क्रिया सफल नहीं हो सकती। मनुस्मृति में लिखा है :—

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलः।
यथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषः प्राणस्यनिग्रहात् ॥

—जैसे अग्नि में डालने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणों के निग्रह—प्राणायाम—करने से इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं।

प्राणायाम की विधि :

प्राणायाम शुद्ध व खुली हवा में करना चाहिए। प्राणायाम करने की विधि किसी योग्य साधक से सीखनी चाहिए। साधारणतः इतना ध्यान रहे कि नासिका छिद्रों से धीरे-धीरे फुफ्फुस को शुद्ध हवा से आकण्ठ भरना, फिर उस हवा को रोकना तथा बाद में धीरे-धीरे बाहर निकालना—यही प्राणायाम है। गहरी साँस लेने से भीतरी गन्दी हवा बाहर निकलती है और ताजी प्राणप्रद, स्वच्छ वायु प्रवेश कर हमारे रक्त को शुद्ध करती हुई रक्त की अभिसरण क्रिया को तेज करती है। प्राणायाम सहज रूप से हो, इसके लिये जबर्दस्ती न की जाय। धीरे-धीरे अभ्यास से प्राणायाम की क्रिया बढ़ती जायगी।

प्राणायाम करते समय मन को सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त रखें। साँस को भीतर ले जाना पूरक, साँस को भीतर रोकना कुंभक और बाहर निकालना रेचक कहा जाता है। प्राणायाम के अनेक भेद-प्रभेद हैं। यह विषय योग्य गुरु से सीखने का है।

सरलासन :

हमारे शरीर के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों को ठीक रखने के लिये आसनों का बहुत महत्व है। आसन योगियों के व्यायाम हैं। पर, आसन केवल मात्र योगियों के लिये ही, जनसाधारण के लिये भी बहुत उपयोगी हैं। कुछ आसन जटिल हैं और उनकी विधि किसी योगी या योग्य गुरु द्वारा ही सीखी जानी चाहिए। यहाँ कुछ सरलासन की चर्चा करेंगे, जिनको करने से हमारा शरीर पूर्ण निरोग बनता है। आसन हमारे शरीर की बीमारियों को दूर करने में भी बहुत उपयोगी हैं। आसन हमको दीर्घजीवी और प्रफुल्ल बनाते हैं।

(क) शीर्षासन :

विधि—यह आसनों का सिरमौर है। शीर्षासन से अनेक लाभ हैं। थोड़े-से

अभ्यास से इसे सरलता से किया जा सकता है। तह किया हुआ कम्बल, गद्दा या कपड़े की गेंठुली बनाकर उस पर अपने सिर को रखें, वाद में सिर के पास दोनों हाथों का पंजा भी सहायता के लिये रखा जा सकता है। कुछ लोग दोनों हाथों को सिर से दूर जमीन पर रखकर शीर्षासन साधते हैं। अब आप धीरे-धीरे पैरों को जमीन से उठाने का अभ्यास करें। प्रारम्भ में कुहनियों पर पैरों को टेक कर ऊपर उठाने का अभ्यास किया जा सकता है। इस आसन में ऊपर की ओर पैर एक सीध में रहें। इसका आप ध्यान रखें कि इस आसन के करते समय आप आँखें मुंदी रखें तथा सारे शरीर का वजन सिर के बीच के हिस्से पर बिल्कुल न पड़े। सिर के बीच के हिस्से पर वजन पड़ने से लाभ के बदले हानि की संभावना है। ललाट के ऊपर, जहाँ से सिर प्रारम्भ होता है, उसी पर शरीर का वजन टिका होना चाहिए।

लाभ—यह आसन १० मिनिट से अधिक न हो। प्रारम्भ में ४-५ मिनिट तक किया जाय। हमारे शरीर के सारे संस्थानों का संचालन मस्तिष्क से होता है। इस आसन से मस्तिष्क को शुद्ध व अधिक मात्रा में रक्त मिलता है। यह आसन स्मरण शक्ति और आँखों की ज्योति को वढ़ाता है।

(ख) सर्वांगासन :

विधि—यह आसन हमारे सारे अंगों पर अपना प्रभाव डालता है, इससे इसे सर्वाङ्गासन कहते हैं। यह आसन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कम्बल बिछाकर आप उस पर लेट जाइए। शरीर को सीधा व ढीला रखें, हथेलियाँ फर्श पर रहें। अब आप साँस खींच कर पैरों को सीधा रखते हुए ऊपर उठाइये, फिर पैरों को नीचा कर लें। बाद में फिर पैरों को ऊपर उठावें तथा उसके साथ अपने पीठ भाग को ऊपर उठावें और शरीर को सीधा रखने के लिये पीछे से कटि प्रदेश को हाथों की सहायता देकर शरीर को सीधा तानिये। इतना सीधा तानिये कि आपकी ठुड्डी पर धड़ का दवाव आ जावे।

लाभ—इस आसन का सारे अंगों पर शुभ प्रभाव पड़ता है। यह आसन मेरुदण्ड को लचीला व शक्तिशाली बनाता है। यह आसन यौवन को स्थिर रखता है तथा जीवन में स्फूर्ति का संचार करता है।

(ग) उत्तान पादासन :

विधि—सीधे जमीन पर लेट जाइये, हाथों को बगल में रखिए। पैरों

को तान कर धीरे-धीरे ऊपर उठावें, पैरों को थोड़ी देर ऊपर रखें और फिर धीरे-धीरे नीचे ले आवें। इस प्रकार वार-वार पैरों को ऊपर ले जावें, वहाँ थोड़ी देर स्थिर रखें और फिर नीचे ले आवें।

लाभ—इस आसन से मन्दाग्नि दूर होती है। भूख वढ़ती है और कब्ज मिटती है।

(घ) धनुरासन :

विधि—धनुरासन का अर्थ है—चढ़े हुए धनुष की तरह शरीर की आकृति का होना। इस आसन में पेट के वल उल्टा लेटा जाता है। वाद में दोनों पैरों को मोड़कर, दोनों हाथों से दोनों पैरों को पकड़ा जाता है। वक्षः प्रदेश आगे तना रहता है। धड़ और घुटनों तक का भाग धनुष का तथा आपस में मिले हुए हाथ तथा घुटनों के नीचे का भाग तनी हुई प्रत्यंचा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इसमें नाभि देश को फर्श पर जमाये रखकर उसके ऊपर तथा नीचे का भाग ऊपर तान कर उल्ट कर हाथों से टखनों के पास पैरों को पकड़ा जाता है।

लाभ—यह आसन शलभासन व भुजंगासन दोनों का मिला हुआ रूप है। इससे जाँघों, हाथों, पैरों तथा धड़ का सुन्दर व्यायाम होता है।

(ङ) मयूरासन :

विधि—यह ठीक मोर के समान होता है। इसमें पैर लम्वी पूँछ तथा हाथ-पैरों का कार्य करते हैं। फर्श पर घुटने के बल वैठ जाइये और दोनों हाथों को कुहनी से कलाई तक मोड़कर फर्श पर हथेली के वल सारे शरीर को सीधा कर दें। वाद में कुहनी के सहारे शरीर के आगे के हिस्सों को जमीन की ओर नीचे करें तथा पैरों को ऊँचा उठावें। शरीर का सन्तुलन वनाये रखें।

लाभ—इससे रक्त का प्रवाह सुचारु रूप से होता है। उदर के भीतरी भाग पर दवाव पड़ने से इन अंगों की शक्ति वढ़ती है। अग्निमान्द्य दूर होता है।

(च) पाद हस्तासन :

विधि—दोनों पैरों के पंजों को आपस में सटाकर खड़े हो जाइये। दोनों हाथों को सीधे ऊपर उठाइये। साथ में एड़ियाँ भी उठाइये। फिर आहिस्ते-

आहिस्ते हाथों को नीचे झुकाते हुए पैरों के अंगूठों को पकड़िये या दोनों हाथों को पंजों के बगल में रखिये। घुटने न मुड़ने पायँ।

लाभ--इससे मोटापन दूर होता है। पेट के दोष दूर होते हैं। तिल्ली और जिगर के दोष मिटते हैं। कमर पतली व लचीली होती है। कद लम्वा होता है।

(छ) हल आसन :

विधि--सीधे सो जाइये और पैरों को धीरे-धीरे घुटनों को विना मोड़े ऊपर उठाइये। फिर कमर के नीचे हाथ लगा कर पीछे की तरफ पैरों को जमीन पर रखिये। फिर हाथों को कमर से हटा कर जमीन पर रख दें। फिर थोड़ी देर रुककर पूर्ववत् हो जावें और वार-वार अभ्यास करें। झटके से आसन न करें।

लाभ--अजीर्ण, प्लीहा, यकृत् एवं पेट के रोग दूर होते हैं। मेरुदण्ड में ताकत आती है एवं वह लचीला वनता है। मस्तक का दर्द दूर होता है एवं उसे वल मिलता है। शरीर के हर अंग को शक्ति मिलती है। भूख वढ़ती है।

(ज) पद्म आसन

विधि--वायें पैर को दाहिनी जंघा पर रखें और दाहिने पैर को वाईं जंघा पर। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। शरीर को सीधा कमर, गर्दन और सिर की सीध में रखें। ऐसा एक मिनिट से आध घण्टे तक किया जा सकता है।

लाभ--मन एकाग्र होता है। चित्त की शुद्धि होती है। पैर सुडौल बनते हैं। घुटनों के रोग दूर होते हैं।

(झ) ताड़ासन :

विधि--पैरों के पंजों को सटाकर खड़े हो जाइये। हाथों को आसमान की तरफ ऊँचा करके पैरों की एड़ियों को ऊपर उठाइये। हाथों को जितना ऊपर की ओर खींच सकें खींचिये। सब १ मिनिट तक कीजिए।

लाभ--नाटा आदमी लम्बा हो जाता है। कब्ज दूर होती है। हाथों एवं पैर के जोड़ों में वल मिलता है।

(ञ) सुखासन :

विधि—आसनों के बीच में सुखासन अवश्य करें। सीधा चित्त लेट जाइये। सारे शरीर को एकदम शिथिल छोड़ दीजिए। शरीर के सारे अंगों को ढीला कर दीजिए। दिमाग को सूना कर दीजिए। सारे विचारों को रोकने का प्रयास करें।

लाभ—इस सुखासन से शरीर को विश्राम मिलता है, थकान दूर होती है। स्नायविक तनाव कम हो जाता है। सुस्ताने से मानसिक शान्ति मिलती है और उसके बाद हम नये श्रम के लिये अपने को तैयार कर लेते हैं।

आसनों का विषय बहुत गंभीर और अनुभवगम्य है। केवल पुस्तकों से आसनों का ज्ञान ठीक प्रकार से नहीं हो सकता। आसन विशारदों से इनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आसन केवल रईसों के व्यायाम नहीं हैं और न बूढ़ों के। इन भ्रन्तियों को आप दूर कर प्रति दिन अपनी आवश्यकतानुसार आसन-व्यायाम का अवअअभ्यास बढ़ाइये। आसन शारीरिक नीरोगता के साथ मानसिक प्रफुल्लता और आत्मिक शान्ति को भी प्रदान करते हैं।

—o—

१६. जीना भी एक कला है

भवन-निर्माण में, मूर्त्ति के तक्षण में या चित्र के आलेखन में निःसन्देह किसी कुशल शिल्पी, मूर्तिकार या चित्रकार की आवश्यकता है। हमारा जीवन भी एक भवन की तरह, मूर्त्ति की सदृश या चित्रवत् है; हमारी कुशलता ही जीवन को भव्य, मोहक और आकर्षक बनाती है। सचमुच जीना भी एक कला है।

बहुत कम लोग हैं, जो जीने की कला से परिचित हैं। अधिकांश लोग जीते हैं; पर, जीने की कला को जानते नहीं। यों ही सारी जिन्दगी सन्देह, भय, दुःख व परेशानी के जाल में फँसा कर बिता देते हैं। जीवन का अर्थ है, आशा और उत्साह। यही यौवन है, यही सौन्दर्य है।

नदी को देखिए, रात-दिन कल-कलनाद करती रहती है। निर्झरिणी हमेशा कूदती-नाचती बहती है, उषा में हमेशा अरुणाई रहती है। हमारा जीवन भी हँसता, गाता, नाचता रहे—इसी में जीवन की सफलता और सार्थकता है।

सफल जीवन के लिये पहली शर्त है—आशावादी बनना। आनेवाला कल आपके लिये नया सुबह लेकर आवेगा, उसमें सुनहलापन भरा है—इसी विश्वास-भावना को जीवन में बढ़ने दीजिए।

अधिकांश लोग यही सोचते रहते हैं कि उनके जीवन में बुरे दिन आनेवाले हैं, उनको अपना भविष्य निराशा के अन्धकार से ढका मालूम होता है। वे पद-पद पर भावी आशंका व अनिष्ट की संभावना से काँपते-थर्राते रहते हैं। वे हमेशा सोचते हैं कि उनके भीतर कोई भयंकर बीमारी या मौत प्रवेश कर रही है। मृत्यु और दुःखों की काल्पनिक प्रेत-छाया उनको रात-दिन परेशान करती रहती है। जीवन उनको काँटों की शय्या नजर आता है।

आप इन दुराशंकाओं को बाहर फेंक दीजिए। हमेशा सोचिए, आपका भविष्य उज्ज्वल है।. निराशा को पास न फटकने दें। जीवन को आशा व उत्साह से भरा हुआ, छलकता हुआ बनावें।

सफल जीवन के लिए आवश्यक है कि आप हमेशा मुख पर मुस्कान रखें। अपने मित्रों, परिचितों व परिवार के सभी सदस्यों से मुस्कराते हुए बातचीत करें। प्रेम व सौहार्द की भावना जीवन को मधुर और प्रिय बनाती है।

सुख और दुःख जीवन में आते ही रहते हैं। सुखों में पागल होना उचित नहीं तो यह भी ठीक नहीं कि हम दुःखों में रोने बैठ जावें। दुःखों को भी मुस्कराते हुए वीरों की तरह झेलने को तैयार रहें। याद रखें, दुःख भ्रान्ति है। हम तो आनन्दस्वरूप हैं। उपनिषद् के शब्दों में हमारा जन्म आनन्द से है, हम आनन्द में रहते हैं और आनन्द में ही हमारा लय है। आनन्द ही नित्य और शाश्वत है। आनन्द ही सत्य है; दुःख केवल भ्रम और माया।

सफल जीवन के लिये आवश्यक है कि आप तर्क को प्रधानता न दें। तर्क जीवन को कटु व नीरस बनाता है। तर्क की एक सीमा है, उसके बाद तर्क व्यर्थ है, अप्रतिष्ठित है। तर्क करनेवाला अपने चारों ओर विरोधों की सृष्टि कर लेता है। श्रद्धा व निष्ठा जीवन के शक्तिशाली सम्बल हैं, गीता में भी कहा है—श्रद्धावान् ही पाता है।

दूसरों के अवगुणों पर दृष्टि न डालें। इस दुनिया में सब प्रकार से निष्क-लुष, पवित्र और पूर्ण कौन मिलेगा। मनुष्य तो गलतियों, त्रुटियों और कमियों का पुञ्ज ही है। एक मात्र ईश्वर को छोड़कर सर्वथा निर्दोष यहाँ कौन है। फिर रात-दिन एक दूसरे की निन्दा करना, दोषों को निकालना या छिद्रान्वेषण करना नीच व्यक्ति का काम है। दूसरों के गुणों का चिन्तन करने से हमारे जीवन में भी गुणों का प्रवेश होता है।

हमें भी सन्तों की तरह सोचना चाहिए, मैं ही दुष्ट हूँ, अधम हूँ, पापी हूँ। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' अथवा कबीर की तरह हमारा अभ्यास भी इस ओर होना चाहिए—

बुरा जो ढूंढ़न मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजो आपना, तो मुझ-सा बुरा न होय॥

हम इस संसार को एक नाटक की तरह समझें, जिसमें हम एक अभिनेता की तरह हैं। भगवान् ने जो पार्ट हमको सौंपा है, उसको अच्छी तरह से निभाने में ही हमारे जीवन की कृतार्थता है। हमारे सामने जो कर्तव्य है, स्वधर्म है, उसको तन्मयतापूर्वक पूर्णरूप से निभावें, इसी ओर हमारी शक्ति लगनी चाहिए।

जीवन का एक ध्येय अवश्य होना चाहिए। जीवन का ध्येय केवल ऐशो-आराम, धन कमाना, वैभव मात्र नहीं हो सकता। जीवन का ध्येय यदि उदात्त और महान् नहीं बनायेंगे, तो मनुष्य-जीवन की व्यर्थता समझिए। हमारा जीवन आहार, निद्रा या भय का यंत्र मात्र नहीं, वह चिन्मय है, आनन्दस्वरूप है। अतः मनुष्य-जीवन का एक मात्र ध्येय है—अपने को मिटाना; लुटाना या समर्पित करना।

दूसरों के लिए समर्पित करने में जो आनन्द है, वह स्वार्थ के लिये रात-दिन दौड़ने में नहीं। 'परोपकाराय लतां विभूतयः' सचमुच हमारी विभूति दूसरों की भलाई के लिये है।

जीवन में तरलता बराबर बनी रहनी चाहिए। आलस्य, प्रमाद व दीर्घ सूत्रिता जीवन के लिए अभिशाप है। कर्मण्यता जीवन के लिये वरदान है। कर्मण्यता ही जीवन की सिद्धि है। हाथ-पर-हाथ धर बैठ रहना या मन के मोदक खाना—दरिद्रता का प्रमाण है। जीवन को सुखी व सफल बनाने की अनिवार्य शर्त है—रात-दिन सुकर्मों में लगे रहें।

निःसन्देह मन बड़ा चंचल व प्रबल है, वह इन्द्रियों को असंयम की ओर दौड़ाता है। मन को काबू में लाना सतत अभ्यास से ही साध्य है। इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने न दें। जो संयतेन्द्रिय नहीं, वह इसे अपने जीवन में सिद्धि लाभ नहीं कर सकता।

जिस प्रकार लकड़ियों का भारा एक साथ टूट नहीं सकता; पर, आप एक-एक लकड़ी को अलग-अलग बहुत आराम से तोड़ सकते हैं, उसी प्रकार जीवन में जो परेशानियाँ आ रही हैं, उन सबको एक साथ मिलाकर न देखें। सबको अलग-अलग रखें, उनसे अलग-अलग जूझें, तभी आप उन सब पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

आप आत्म-शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करें। आदमी अपनी कमजोरियों को तो जानता है, पर, वह अपनी शक्तियों से मुँह मोड़े बैठा रहता है, वह अपने में निहित शक्ति-स्रोतों को पहचानता भी नहीं। आदमी यदि अपनी शक्तियों को जान ले तो उनका प्रवाह जब प्रबल वेग से उमड़ेगा तो उनको सँभाल सकना भी मुश्किल। भगवान् शिव की जटाओं से निकली गंगा की प्रचण्ड धारा जिस प्रकार दूर-दूर तक फैल गई और उसका प्रवाह रोके न रुका, उसी प्रकार मनुष्य के भीतर भी अनन्त शक्तियों का भाण्डार है, उनको पहचानना जीवन की सफलता की ओर उन्मुख करना है।

प्रतिदिन शुभ संकल्प करें। संकल्प जीवन के लिए वज्र-शक्ति है। जिस आदमी की संकल्प-शक्ति सुदृढ़ है, उसको कोई भी विपत्ति न झुका सकती है और न हिला सकती है। हवा का वेग वृक्षों को उखाड़ता है, पर वही पहाड़ से टकरा कर स्वयं मूर्च्छित हो जाता है।

जीवन की कला में धैर्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अधीरता व उतावलापन बने-बनाये काम को चौपट कर देता है। धैर्य का फल मधुर होता है। 'उतावला सो बावला' यह कहावत सवा सोलह आना सही है।

धीरे-धीरे रे मना ! धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै बाग ने, रुत आयां फल होय ।।

हरेक काम का एक समय है। चित्त की चंचलता व मन की विकलता हमारे जीवन को असफलता की ओर ले जाती है।

हमको महत्वाकांक्षी बनना चाहिए। 'सन्तोषी सदा सुखी' हमारा इसमें विश्वास नहीं। बड़े बनने की इच्छा प्रत्येक मनुष्य में होनी चाहिए। संसार के इतिहास में यह बात अनेक रूपों में प्रमाणित हो चुकी है कि जिन व्यक्तियों के मन में असन्तोष, जिज्ञासा या महत्वाकांक्षा थी—वे ही संसार में महान् यशस्वी और वैभव सम्पन्न बने हैं।

अपने को तुच्छ, हीन और अयोग्य न समझें। हमारे ऋषियों ने कहा है—मैं शिव हूं, मैं ब्रह्म हूँ। सूफियों ने कहा—मैं अनलहक हूँ। हीनता-ग्रन्थि को काटे बिना हमारी उन्नति का पथ प्रशस्त नहीं बन सकता।

हमारा पथ महान् हो, हमारा लक्ष्य उदात्त हो; फिर हमारे लिए सफलता व विफलता बराबर है। महान् उद्देश्य के लिए जीवन को जीना—स्वयं में सफलता है, स्वयंसिद्धि है। पवित्र व महनीय कार्यों में मिली विफलता भी हजारों सफलताओं से बढ़कर है।

व्यक्तिगत जीवन में कर्त्तव्य को प्रधानता दें, अधिकार को नहीं। अधिकारों के लिए लड़नेवाला—कर्त्तव्य-पालन के सुख से वञ्चित हो जाता है। जो कर्त्तव्य हमारे सामने हैं, उनका पालन करते रहने में हमारे जीवन की कृतार्थता है।

हमारा उद्देश्य है—सब सुखी हों, सब निरामय हों, सबका कल्याण हो, कहीं दुःख का नाम भी न रहे। इस प्रकार के उदार विचारों का पथिक ही जीवन में सच्चे सुख व शाश्वत शान्ति की प्राप्ति कर सकता है।

सचमुच मनुष्य वही है जो मनुष्य के लिये त्याग करे, प्राणों को सिर्वजित करने को भी तैयार रहे। हमारे राष्ट्र कवि गुप्तजी ने बहुत प्रेरक भाषा में इसी विचार को व्यक्त किया है—

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी।
मरो, परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी ।।
हुई न जो सुमृत्यु जो वृथा मरे वृथा जिये।
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिये ।।
यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ।।

—o—

२०. हँसना ही जीवन है

लोगों की आदत है, जान-बूझ कर चेहरे को गंभीर बनाना, अपने को बुजुर्ग साबित करने की कोशिश करना। व्यर्थ में ही अपनी मुख मुद्रा को गम्भीर, उदास या संजीदा बनाना ठीक नहीं। जीवन का सच्चा अर्थ है—हँसना। हमको खिलखिला कर हँसना चाहिए। हँसना स्वास्थ्य के लिये सर्वोत्तम औषध है।

एक विद्वान् ने मनुष्य का लक्षण बयान करते हुए कहा है कि मनुष्य वह है, जो हँसे। पशु-पक्षी गाते हैं, किलकारी मारते हैं, रोते हैं, उदास होते हैं—पर, वे हँसते नहीं। हँसने का काम केवल मनुष्य ही करता है। हमारा कर्त्तव्य है कि जीवन में विनोद व परिहास को प्रमुखता दें।

बात-बात में लड़ना, झगड़ना, डाँटना, फटकारना एक ऐसी बुरी आदत है जो मनुष्य को क्रोधी, झक्की और चिड़चिड़ा बना देती है। क्रोध शरीर का शत्रु है, चरित्र को गिरानेवाला और बुद्धि का नाशक है।

जीवन कोई गम्भीर समस्या नहीं, वह एक हँसी-खुशी का नाटक है। उसमें हँसी के फव्वारे बराबर छूटने चाहिए। विनोद व परिहास की बातों से मित्र मण्डली हमेशा गूँजती रहनी चाहिए। जब वातावरण गम्भीर बन रहा हो, कोई-न-कोई ऐसी बात कह देनी चाहिए, जिससे सभी लोग खिलखिला कर हँस पड़ें और रंजोगम की घटनाएँ उड़ जावें।

संसार में हँसी-मजाक कम होते जा रहे हैं। घरों से विनोद उठ रहा है। मुहल्लों व गलियों में कहकहे अब कहाँ लगते हैं! कार्यालय, दफ्तर या फैक्टरियाँ—उदास, तनाव पूर्ण और गम्भीरता के बोझ से दब रहे हैं। कहीं जीवन नहीं, चहल-पहल नहीं, नियम-क़ानून का बेहद बोझ, सारा जीवन यंत्रवत्—नीरस, निर्जीव और रोता-कराहता।

हम लोग हजारों प्रकार की समस्याओं में उलझ पड़े हैं। ये सब बातें हमारे स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल हैं। हमारा मन उद्विग्न, उदास, मुरझाया हुआ, टूटा हुआ और व्याकुल है। जीवन भारस्वरूप है, चिन्ताओं से ग्रस्त, परेशानियों से दबा हुआ और विपदाओं के झोंके से झकझोरा हुआ।

स्वस्थ रहने का सर्वोत्तम उपाय है—खूब हँसिये, खिलखिला कर हँसिये, ठहाका मार कर हँसिये। अट्टहास द्वारा जो घर या औफिस गुंजरित रहते हैं, वास्तव में वे धन्य हैं।

हँसने से शरीर में फैलाव आता है, संकुचन व आकुंचन नष्ट होकर उसमें प्रसारण होता है। हँसने के साथ ही दिल का वोझ हल्का हो जाता है। दिमाग का तनाव मिट जाता है। रक्त की अभिसरण क्रिया तेज हो जाती है, रक्त के शुद्धीकरण में इससे सहायता मिलती है। हँसना मुख का सुन्दर व्यायाम है। हँसनेवाले का मुख मंडल गुलाव की तरह खिला रहता है, आँखें चमकीली रहती हैं और चारों ओर का वातावरण प्रफुल्ल वना रहता है। जिन्दगी में जिन्दा दिली होनी चाहिए। अधिकांश लोग जिन्दगी के रूप में शव को ढोते हैं, चेतना विहीन, प्रफुल्लता रहित, उदास व खंडित जिन्दगी—जिन्दगी नहीं।

हँसने-हँसाने की आदत डालने की पहली शर्त है—झूठी, नकली गंभीरता को छोड़ दीजिए। गंभीरता हँसी को नष्ट कर देती है। 'रोग की जड़ खाँसी, लड़ाई की जड़ हँसी'—हँसी-मजाक उस समय लड़ाई का कारण वनती है, जबकि हँसी करनेवाले का मन निर्मल न हो, सामनेवाले के विरुद्ध मन में कटुता, द्वेष या ईर्ष्या का भाव हो। निर्मल मन में सच्ची हँसी की तरंगें उठा करती हैं। जिनके प्रति हम विनोद-परिहास कर रहे हैं, उनके प्रति हमारे मन में सद्‌भाव हो। हँसी का काम है—चारों ओर प्रसन्नता को फैलाना। हँसी एक लहर की तरह है, जिसकी तरंगें दूर-दूर तक फैलती है।

हँसने से हमारा स्नायविक संस्थान सहज रूप में आ जाता है। आज संसार की वीमारियों का मूल कारण है—दिमागी तनाव, स्नायविक खिंचाव। जीवन में सरलता और सहजता नहीं। दिन भर, रात भर हम अपने शरीर व मन को तना हुआ रखते है। यह खिंचाव हमारे जीवन को दुर्वह वनाता है, अनेक प्रकार की आधि-व्याधि को जन्म देता है। हमारा जीवन नरक की तरह वन जाता है।

हँसी-मजाक से शरीर तो स्वस्थ रहता ही है, मन भी प्रसन्न रहता है, मन की ग्रन्थियाँ खुलती है। हास्य-विनोद मनुष्यों को मिलाता है। हँसी-माजाक के द्वारा हमारा मित्र वर्ग वहुत वड़ा वनता है। हँसी-मजाक करनेवाले को सभी चाहते हैं, सभी उससे मित्रता करने के लिये लालायित रहते हैं।

हँसी की आदत हमें दीर्घजीवी वनाती है। हँसी मजाक करनेवाले की वुद्धि म प्रखरता आती है, निर्णय शक्ति का विकास होता है। जिन राजनीतिज्ञों या उच्च अधिकारियों में हँसी-मजाक की आदत है, वे अपना कार्य सम्यक् प्रकार से लम्बे अर्से तक करते हैं। मुहर्रमी सूरत जीवन के लिये अभिशाप है।

स्कूलों में देखिये, जिन कक्षाओं के अध्यापक विनोद प्रिय हैं, लड़के उनके प्रति खूब आकर्षित रहते हैं। मास्टर साहब के चुटकुलों पर हँसी-विनोद की बातों से यदि कक्षाएँ गुंजरित न हुईं तो पढ़ाना कैसा ! बीच-बीच में हँसी-विनोद का वातावरण तो रहना ही चाहिए, इससे लड़के ज्ञान को ग्रहण करने या विषय को हृदयंगम करने में अपने को ज्यादा सक्षम कर पाते हैं। गम्भीर से गम्भीर बातें हँसी-मजाक का सम्पुट लगते रहने से बहुत मधुर व सरस होकर मस्तिष्क द्वारा सरलता से ग्रहण कर ली जाती हैं।

प्राचीन समय में विदूषक, मजाकिये, भांड, मशखरे—हमारी इसी हँसने की आदत को बनाये रखने के साधन थे।

आजकल सभ्यता की दौड़ लग रही है, काम-काज का भार बढ़ रहा है, समस्याओं की अधिकाधिक सृष्टि हो रही है, ऐसे समय में हँसना हमारे लिये बहुत आवश्यक है। हँसी के अभाव में 'हार्टफेल' बढ़ रहे हैं। दिन भर काम की चक्की में जीवन पिस रहा है, कराह रहा है, टूट रहा है, बिखर रहा है—इन सब को सँभालने का उपाय है—हँसी-विनोद की आदत। हँसी-मजाक की आदत से कार्य-शक्ति बढ़ती है।

आजकल जहाँ जाइये, वहाँ राजनीति की एक मात्र नीरस चर्चा, एक दूसरे की आलोचना, एक दूसरे पर आक्षेप—यह स्थिति अस्वाभाविक और जीवन को रुग्ण बनानेवाली है। हमारी कार्य-शक्ति दिन-प्रति-दिन कम हो रही है, सहिष्णुता का अभाव हो रहा है, जरा-जरा-सी बात पर लड़ने-झगड़ने को तैयार हैं। इन सारी बीमारियों का मूल कारण यह है कि हमने जीवन को गंभीर व संजीदा—कहना चाहिए व्यर्थ का रंजीदा बना रखा है। भार पर भार बढ़ रहा है, हल्का करने का एक मात्र साधन है, हँसी-मजाक।

जीवन चाहे रेगिस्तान की यात्रा ही क्यों न हो, हँसी-विनोद के द्वारा वह नखलिस्तान में बदला जा सकता है। वह सरस, मधुर और प्रिय बनाया जा सकता है।

हमारे साहित्य में भी हँसी-मजाक की रसीली, चरपरी, चटपटी, जायकेदार बातें नहीं ! ज्ञान के भार से दबी बात नीरस, बेतुकी बातों की भरमार है। साहित्य में घुटन है, कुण्ठाओं का खेल है, दबा-दबा सिकुड़ा-सिकुड़ा घुटा-घुटा वातावरण है, वह खुला उत्फुल्ल वातावरण कहाँ ! जीवन की विवशताओं की चर्चा ज्यादा है, सफलताओं की कम। एक दूसरे पर आरोपों-प्रत्यारोपों की भरमार है; विरोध को हँसी-हँसी में उड़ाने की भावना कहाँ ! सहिष्णुता व उदारता की कमी, ईर्ष्या-द्वेष का प्राबल्य—फिर हास्य-विनोद के लिये अवकाश कहाँ।

बायरन ने सदा हँसने की सलाह दी है, क्योंकि यह एक सस्ती दवा है। हँसनेवाले के साथ संसार है। किसी ने कहा है—'हँसो और संसार तुम्हारे साथ हँसेगा, रोओ और तुम्हें अकेले रोना पड़ेगा।' हँसी वह फुहार है, जो अपने चारों ओर आनन्द को बिखेरती है।

योन नागोची ने हँसी को बराबर बनाये रखने की प्रार्थना करते हुए कहा है—

"जब जिन्दगी के कगारों की हरियाली सूख गयी हो, पक्षियों का कलरव मौन हो गया हो, सूरज के चेहरे पर ग्रहण की छाया गहरी होती जा रही हो, परखे हुए मित्र और आत्मीय जन मुझे अकेला छोड़कर चल दिये हों और आसमान की सारी नाराजगी मेरी तकदीर पर बरसने वाली हो, तो हे मेरे प्रभु, तुम मेरे साथ इतना अनुग्रह करना कि मेरे होठों पर हँसी की एक उजली रेखा खिंच जाये।"

आपने स्वयं जीवन में इतनी मूर्खताएँ की हैं, वे ही हँसने और संसार को हँसाने के लिये पर्याप्त हैं। दूसरों की मूर्खता की हँसी उड़ाना अनुचित है, आप हँसाने का कार्य अपनी मूर्खता से प्रारम्भ करें। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि जब मैं स्वयं पर हँसता हूँ तो मेरा अपना बोझ हल्का हो जाता है। हमारे भीतर का विषाद और आनन्द हँसी के तेज झोकों से रूई के कतरों की भाँति उड़ कर नष्ट हो जाता है।

जार्ज बर्नार्ड शा ने हँसी की इस अमूल्य औषध का खूब अनुभव किया था, उनकी सुलझी हुई सम्मति है—'हँसी की सुन्दर पृष्ठ भूमि पर जवानी के प्रसून खिलते हैं। जवानी को तरोताजा रखने के लिये आप खूब हँसिये।'

हँसी का यौवन व सौन्दर्य से अटूट सम्बन्ध है। यौवन का आनन्द हँसने में है। हँसी ही यौवन का सुन्दर शृंगार है। जो व्यक्ति यौवन का शृंगार नहीं कर सकता, उसके पास वह हर्गिज नहीं ठहर सकता।

हँसी हमारे जीवन की सफलता की कुंजी है।

—०—

२१. जीवेम शरदः शतम्

हमारे चारों ओर उल्लास है। ऊपर तारों से जड़ा आसमान है, कभी शीतल उजली चाँदनी की कोमल क्रीड़ा है, सामने दिगन्त व्यापी हरित परिधान धारण किये प्रकृति नटी अपनी अद्भुत लीलाओं से हमें मोहित करती है। चारों ओर प्रकृति सुन्दरी, क्षण-क्षण में पट परिवर्तन करती हुई अपनी लावण्यमयी लीलाओं का अनन्त विस्तार कर रही है। मायामयी की इस क्रीड़ा को हम चाहते हैं, युग-युग तक देखते रहें।

मनुष्य के हृदय में दीर्घ जीवन की बड़ी प्रबल और दुर्दमनीय आकांक्षा है। वैदिक ऋषि की यह वाणी माननीय भावना की सफल अभिव्यक्ति है—

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ॥
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रजाम शरदः शतमदीनाः।
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

[हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर, आप विद्वानों के हितकारी, शुद्ध नेत्र तुल्य, सबके दिखाने वाले, अनादिकाल से अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं, उस आपको हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से ही सौ वर्ष तक जीवें। सौ वर्ष तक श्रेष्ठ शास्त्रों को सुनें।

सौ वर्ष तक पढ़ावें और सौ वर्ष तक दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, सुनें और अदीन रहें।]

हमारी आकांक्षा केवल सौ वर्ष तक जीने मात्र की नहीं है, जीना तो फिर अच्छी तरह से जीना, शान व गौरव के साथ जीना, आनबान और मान को बनाये रखकर जीना, किसी का मुँहताज बन कर नहीं, अपने पौरुष को जाग्रत रखकर जीना। जीने का अर्थ—केवल साँसों का आना-जाना नहीं। बीमार, रुग्ण, क्षीण बल, नेत्र ज्योति हीन, वधिर या पंगु बनकर जीना भी कोई जीना है! इस प्रार्थना में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि हम सौ वर्ष तक देखते रहें, सुनते रहें, चलते रहें, काम करते रहें। अर्थात् हमारी सब इन्द्रियाँ शक्तिशाली व पुष्ट बनी रहें। हमारे मन में भी किसी प्रकार का दैन्य भाव न हो, कार्पण्य न हो। शक्ति, स्वावलम्बन व पौरुष के बिना दीन-हीन पर-मुखापेक्षी जीवन किसी भी प्रकार वाञ्छनीय नहीं।

हम जीना ही नहीं चाहते हैं, शान से जीना चाहते हैं, प्रश्न है—क्यों ? जीवन का उदात्त उद्देश्य या महान् लक्ष्य बनाये बिना यों ही पृथिवी पर भारस्वरूप बन कर जीने की हमारी आकांक्षा नहीं।

जीने की आकांक्षा चाहे कितनी ही प्रबल क्यों न हो, आकांक्षा मात्र से फल प्राप्ति संभव नहीं। इसके लिये प्रथम तो इस बात की आवश्यकता है कि हम शरीर को नीरोग व स्वस्थ-सबल बनाये रखने के लिए अपनी दिनचर्या को नियमित, व्यवस्थित बनावें। शरीर भगवान् के रहने का पवित्र मन्दिर है। अतः शरीर की ओर ध्यान रखना, अर्थात् नियमित व संयमित आहार, विहार, विश्राम सभी की ओर ध्यान रखना दीर्घ व सफल जीवन के लिए आवश्यक है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उस पर अनेक उत्तरदायित्वों का भार है, उनको निभाना हमारा परम कर्त्तव्य है। देश, जाति व समाज की सेवा करते हुए प्राणि मात्र की भलाई करना—मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं, इन्हीं की उपलब्धि जीवन का लक्ष्य है।

संसार के अनन्त सुखों को सभी भोगना चाहते हैं। लेकिन, कितने लोग हैं जो भोग सकते हैं। भोग का शक्ति बनाये रखना, बहुत कठिन है। अधिकांश लोग इन्द्रिय सुख के लोलुप बन, भोग के आकांक्षी हो अपने को जलती हुई आग में झोंक देते हैं—जिसका कुफल सामने है। भोग का शोर ज्यादा है, पर भोग शक्ति दिन-प्रति-दिन क्षीण होती जा रही है। हजारों दवाइयों से भी उसे जीवित नहीं किया जा सकता, रात-दिन अश्लील नग्न प्राय सिनेमा व दूषित किताबों के उत्तेजक वर्णनों से भी उसे लौटाया नहीं जा सकता। यह मार्ग तो नाश का है, योग शक्ति को दुर्बल बनाने का है।

भोग की शक्ति को बनाये रखने का एक मात्र मार्ग है—इन्द्रिय संयम। यदि आप इन्द्रियों को रोक नहीं सकते, वश में नहीं रख सकते तो फिर समझ लीजिये आप संसार के सुखों का उपभोग भी नहीं कर सकते। संयम व तप—हमारे शक्तियों को बरकरार रखते हैं।

शराब या नशीले पदार्थ हमारी जीवनी-शक्ति को भीतर-भीतर खा रहे हैं, हम अन्तः शून्य बन रहे हैं, उत्साह हमारा खत्म हो रहा है, उदासी बढ़ रही है। लोगों की संयम के प्रति आस्था व निष्ठा डाँवाडोल है। लेकिन, प्राप्ति तो संयतेन्द्रिय को ही होती है।

दीर्घ जीवन के लिए व्यायाम, मानसिक पवित्रता, संयम, विचारों की पवित्रता, आचरण की शुद्धता—सभी आवश्यक हैं। मनसा, वचसा व कर्मणा हमारा जीवन निर्मल हो, तभी हम दीर्घायुष्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

केवल दीर्घायुष्य की प्राप्ति हमारा लक्ष्य नहीं था, जीवन धारणा करना तो हमारा साधन मात्र है। जीवन की सिद्धि तो इसमें नहीं। अपने लिये जीना, कोई जीना नहीं। वैदिक ऋषि ने प्रकाशमान परमेश्वर को देखते हुए जीने की इच्छा की। इसे चाहे आप निर्वाण कहियें, चाहे मोक्ष, चाहे धर्म की सिद्धि कहिए या निःश्रेयस की प्राप्ति। लोकसंग्रह के लिये जीना वास्तव में जीना है।

संसार से दूर जाकर मोक्ष की साधना नहीं! संसार से दूर जाना, कहने के लिए है, संसार तो हमारे चारों ओर है। यह संसार, जहाँ वेदना-पीड़ा है, उसकी सेवा में अपने को समर्पित करना, अपनी करुणा की वृष्टि से इसे गत भय, गत रोग, गत शोक बनाना हमारा कर्त्तव्य है।

प्राचीन समय में हमारे ऋषियों ने जीवन को चार आश्रमों में विभक्त कर रखा था। चार आश्रमों की यह व्यवस्था व्यक्ति, समाज व सारी मानव जाति के लिए आज भी कल्याणप्रद है। जीवन में सुख-शान्ति का यही आदर्श पथ है।

जीवन का प्रथम आश्रम है—ब्रह्मचर्य। यही वह सुनहला समय है, जब हम जीवन के विशाल प्रासाद की नींव रखते हैं। यह समय ज्ञानार्जन का है, शरीर को पुष्ट, सबल बनाने का, सुसंस्कारों के निर्माण का समय है। इस समय हम अपने शरीर को पुष्ट व तेजस्वी, मन को उत्साही, मस्तिष्क को प्रखर, विवेक को जाग्रत् और हृदय को उदार बनाते हैं। जीवन की लम्बी सफर की तैयारी इस समय हम करते हैं।

आज के स्कूलों, शहरों व हमारे घरों का वातावरण विद्याध्ययन के लिये अनुकूल नहीं। छात्रों की चारों ओर का वातावरण अस्वास्थ्यकर, दूषित व उत्तेजक है—उसके बीच वे अपने अध्ययन को प्रारम्भ करते हैं। इन प्रतिकूल परिस्थितियों को सुधारे बिना विद्यार्थियों को उलहना देना या उन पर आक्रोश करना व्यर्थ है। खाद्य पदार्थों मे शुद्धता नहीं, सात्विक भोजन सुलभ नहीं, इन सब का दुष्प्रभाव शरीर पर पड़ता है, जिससे हमारा मन भी रुग्ण व कुण्ठाग्रस्त हो जाता है।

छात्रावस्था की सफलता पर ही हमारे जीवन की शेष सफलता निर्भर है। लोग गृहस्थ हो जाते हैं, बस इसी आश्रम में जीवन की समाप्ति हो जाती है। घर-परिवार से चिपटा हुआ आदमी अकाल ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर संसार से कूच कर जाता है। वानप्रस्थ व संन्यास जीवन में आ ही नहीं पाते।

हम आज दौड़ रहे हैं। हमारा कहना है, आप रुक कर जरा सोचें, विचार करें, यह पथ जिसको हमने चुना है, क्या हमारे विकास का है, सुख-शान्ति व समृद्धि का है। यदि हमारे अनुभव इसके प्रतिकूल हों, तो फिर पागलों की तरह

दौड़ने में कौन बुद्धिमानी है। रास्ते को बदला जा सकता है, पुराने रास्ते जो ठीक हों, उनका पुनः अनुसरण किया जा सकता है।

हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि हमारे प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति के अंचल में रहकर, जीवन की कृत्रिमता से दूर रहकर, विश्व की सेवा का जो व्रत लिया था—वही पथ विश्व मंगल का है। आर्य संस्कृति के श्रेष्ठ तत्व हैं—त्याग पूर्वक भोग करना। केवल अपने लिये पकाना—पापों को खाना है। केवल अपना ही ध्यान रखना—पशु प्रवृत्ति है।

जहाँ हमने गिरते हुए को सँभाला, बीमार की ओर सेवा के लिये कदम उठाया, या किसी दुःखी के आँखों से झरते आँसुओं को पोंछने के लिये हाथ बढ़ाया —मानों हमनें दीर्घजीवन के उद्देश्य को आत्मसात् कर लिया है। यही मानव की संस्कृति है, यही सच्चा धर्म है। यही आदर्श नागरिकता है, यही सच्चा मजहब है, पंथ है, सम्प्रदाय है और इसी में जीवन की सार्थकता है।

हम सौ वर्ष तक जीवें, संयमपूर्वक रहें, शरीर को स्वस्थ-प्रसन्न रखें। हमारी सभी शक्तियाँ मानव की सेवा में समर्पित हों।

हम भी वैदिक ऋषि की तरह 'जीवेम शरदः शतम्' हम सौ वर्ष जीवें की उदात्त भावना को हृदयंगम करते हुए सब सुखी हों, सब निरामय हों, सबका कल्याण हो, भारत वर्ष की इसी मानवी संस्कृति का विश्व भर में उद्घोष करें।

हम अपने विचारों को उदार व उदात्त बनावें। हम अपनी संकीर्णता, क्षुद्रता व अल्पता को छोड़ कर भूमा को अपनावें। भूमा ही सुख है, अल्पता ही दुःख है—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

आज विश्व में रोग व शोक का प्रावल्य है। हमारी मंगलाकांक्षा है कि सभी लोग सुखी व नीरोग हों। इसके लिये हम अपनी क्रिया शक्ति को जाग्रत् करें, आत्म बल को पुष्ट करें और संकल्प शक्ति की ज्योति से सारे विश्व को जगमगा दें।

तभी हमारे वैदिक ऋषि की यह प्रार्थना सफली भूत होगी।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतॐ॥
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रजाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

—०—

टिप्पणी

औषधि-निर्माण-विधि और उपयोग

अवलेह

आयुर्वेद शास्त्र में अवलेह स्निग्ध (तर) चिकित्सा के लिये अत्यन्त ही गुण-दायक है। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को इसके सेवन से किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। रोगानुसार अनुपान के साथ इसका सेवन कर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए। कहा है :—

क्वाथाहीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया।
सोऽवलेहश्च लेहः स्यात्तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता॥

अर्थात्—स्वरस, फाण्ट, कल्क एवं क्वाथ का पुनः पाक करके जो घनता लाई जाती है, उसे रसक्रिया कहते हैं। रसक्रिया को अवलेह और लेह भी कहा जाता है।

च्यवनप्राशावलेह

यह अवलेह क्षीणकाय व्यक्ति के लिये रसायन है। सब के लिये सिद्धौषधि है। श्वास, कास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह (हृदय एवं फुफ्फुस स्पन्दन में यदा-कदा अवरोध) वातज, पित्तज व्याधियों, मूत्र विकारों, शुक्र विकारों को भी यह नष्ट करता है।

कुछ समय तक सतत सेवन करते रहने से बुद्धि, स्मरण-शक्ति, संभोग-शक्ति, कान्ति, सुन्दरता और मुख पर सदा प्रसन्नता बनी रहती है। ध्यान देना चाहिए कि अजीर्ण रोगी प्रथम अजीर्ण दूर करे तब इसका सेवन करे अन्यथा लाभ नहीं होगा।

द्रव्य—दशमूल यानी (पाढल, अरनी बेल, गम्भारी, अरलू, गोखरू, शालपर्णी, प्रश्नपर्णी, छोटी और बड़ी कटेरी दोनों। पिप्पली, कांकड़ासिंगी, मुनक्का, गुडूची, हरीतकी, बला (खरेंटी) भूम्यामलकी, अडूसा, ऋद्धि (वाराही कन्द), जीवन्ती, कचूर, जीवक-ऋषभक (वाराही कन्द), नागरमोथा, पुष्करमूल, काकनासा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारी कन्द, पुनर्नवा, काकोली क्षीरकाकोली (असगन्ध), कमल, मेदा, महामेदा (शतावर) छोटी, इलायची, अगर, सफेद चन्दन—प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोला।

निर्माण-विधि—जौकुटचूर्ण बना कलईदार बर्तन में १२ सेर ३ पाव ४ तोला जल डाल दें। इसी बर्तन में ५०० नग बड़े आपूर्ण रसवीर्य आँवला भी डाल कर मन्दाग्नि में पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर छान लें। आँवलों को पृथक् करके, गुठली निकाल कर फेंक दें, और आँवलों की पीठी बना लें। इस पीठी को एक स्वच्छ कलई के बर्तन में २८ तोला घृत डाल कर सेंकें, पुनः छना हुआ क्वाथ डाल कर जल्दी-जल्दी चलावें, चीनी अढ़ाई सेर डाल कर पाकवत् पाक करें।

प्रक्षेपणीय द्रव्य—शीतल हो जाने पर—पिप्पली चूर्ण ८ तोला, वंशलोचन १६ तोला, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ९-९ माशा डाल कर मिला दें और मधु २४ तोला मिला लें। यही च्यवन ऋषि का बनाया योग "च्यवनप्राश" कहलाता है। विशेष द्रष्टव्य—चरक में कटु तैल ६ पल लिखा है, शार्ङ्गधर में नहीं।

(२) वासावलेह

'वासा' को अडूसा भी कहते हैं। यह द्रव्य इस संसार में बड़ा ही उपयोगी है। श्वास, कास को जड़ से दूर करनेवाली कोई औषधि है तो 'वासा' है। यह स्वाद में कटु होता है। यह कई प्रकार का होता है, जैसे—सफेद, काला, पीला। सफेद अडूसा (वासा) काले अडूसा की वनिस्पत श्रेष्ठ होता है। इसमें श्वास नलिका व फेफड़ों की उष्णता को दूर करने की शक्ति निहित है। सूखी खाँसी व जिस श्वास में कफ न निकलता हो। और रोगी परेशान रहता हो, उसको अडूसा जीवन है। किन्तु पीला अडूसा दाँतो की बीमारियों को ठीक करता है। सफेद अडूसा का ही वासावलेह बनता है :—

द्रव्य—वासा के पत्ते ४०० तोला, पानी ३२०० तोला काढ़ा करके चतुर्थांश शेष रहने पर हरड़ चूर्ण २५६ तोला मिलाकर गाढ़ा कर लेना चाहिए। पुनः ३२ तोला, मधु, (वंशलोचन) बाँस कपूर ८ तोला, पिप्पली २ तोला, चतुर्जात

४ तोला मिला मिट्टी के पात्र में रखता या चीनी अथवा कांच-पात्र में रखना। यह रक्त पित्त, क्षय, श्वास-कास, हृदय रोग, उरःक्षत तथा रक्त के वमन में लाभ पहुँचाता है।

(३) हरीतक्यादि अवलेह

जौ (यव) २५६ तोला, दशमूल ८० तोला, हरड़ नग १००, चित्रक मूल, पिप्पली मूल, अपामार्ग, कचूर, कोंच, शंखाहुली, भार्गी मूल, गजपिप्पली, पुष्कर मूल प्रत्येक ८ तोला सबके वजन से अठगुने पानी में उबालना चाहिए। चौथाई शष रहने पर छान लेना चाहिए। हरड़ों को छान खोवा बना लेंना चाहिए। क्वाथ को आंच पर चढ़ाना, गुड़ १६ सेर, घी ३२ तोला, तिल तैल ३२ तोला, हरड़ का खोवा मिला कर पाक करना चाहिए। जब पाक गाढ़ा हो जाय तब इसमें मधु १६ तोला, पिप्पली १६ तोला, मिलाकर पाक बना लेना चाहिए।

उपयोग—क्षय, कास, ताप, दमा, हिचकी, अर्श, अरुचि, पीनस रोग, संग्रहणी आदि को ठीक करती है।

पाक

आयुर्वेद में पाक शास्त्र का बड़ा महत्व है। शारीरिक शक्ति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिये तथा क्षीण काय (कमजोर) व्यक्ति के लिये 'पाक' सेवन करना अत्यन्त ही आवश्यक है। शीतकाल में ही पाकों के उपयोग से वर्ष भर को पूर्ण शक्ति मिल जाती है। अत—

सौभाग्य शुण्ठी पाक

विधि—३२ तोले सोंठ का चूर्ण करके गाय के घी में और ८ सेर गाय के दूध में खोवा करें। पुनः ८ सेर चीनी की चाशनी करके इसमें खोवा और धनियां ३ माशा, सोंफ १। तोला, वायविडंग, सोंठ, नागकेशर, मिर्च, पिप्पली, मोंथा, प्रत्येक ४ तोला, बादाम, पिस्ता, चिरौंजी को घी में भूनकर पाक तैयार करें।

यह पाक स्त्री-रोगों में अत्यन्त ही लाभदायक है जैसे—प्रसूति रोग, प्यास, वमन, ज्वर, शोष, श्वास, कास, प्लीहा, क्रमि आदि के लिये अत्युत्तम है।

वादाम पाक

विधि—वादाम की मींग २० तोला, खोवा १० तोला, मुगलाई, वेदाना ४ तोला, लौंग, जावित्री, जायफल, केशर, बाँस कपूर, (वंशलोचन) कमलगट्टा प्रत्येक ६-६ माशा, इलायची, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर प्रत्येक १-१ तोला, चीनी २॥ सेर, घी २० तोला।

निर्माण विधि—वादाम का चूर्ण तथा खोवा घी में भून लें, पुनः चीनी की चाशनी करके सब वस्तुएँ मिला दो तव अभ्रक भस्म ६ माशा, वंगभस्म ३ माशा, चाशनी करके सब वस्तुएँ मिला दें तब अभ्रक भस्म ६ माशा, वंग भस्म३ माशा, स्वर्णमाक्षिक भस्म ९ माशा, प्रवाल भस्म ६ माशा, इन सब भस्मों को यथा शक्ति मिलाना चाहिए।

मात्रा—१ से २॥ तोला।

उपयोग—पुष्टिकारक, शक्तिवर्द्धक ज्वर जन्य निर्बलता के लिये अत्यन्त उपयोगी है। सातवीं धातु की वढ़ाता है, पौरुषेय शक्ति को देनेवाला है।

कोंच पाक

शीतकाल में इस पाक का सेवन गृहस्थिनियों को अवश्य ही करना चाहिए। अत्यन्त लाभप्रद है। यह पाक अत्यन्त ही वाजीकरण है। मेधा वृद्धि को वढ़ाता है, अत्यन्त ही पौष्टिक व उत्तेजक है।

निर्माण-विधि—कोंच के बीजों को पानी या दूध में उवाले फिर उसका छिलका उतार कर मींग को पीस लेना चाहिए। मींग १२८ तोला, दूध २५६ तोला में खोवा कर लें। इस मावा को ३ या ४ सेर घी में भून कर दूनी खांड या चाशनी में निम्नांकित वस्तुओं के साथ मिला कर पाक वना लेना चाहिए।

द्रव्य—केशर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, पिप्पली, सोंठ, लौंग, अनारदाना, जावित्री, जायफल, अकरकरा, कंकोल, विधारा के बीज, अजवाइन, मूसली, हरड़, प्रत्येक २-२ तोला और कपूर १। तोला, रससिन्दूर, नागभस्म आदि ऊँची औषधियाँ यदि डाल दी जायें तो अच्छा है। यदि वंशलोचन २ तोला डाला जाय, तो गुण वृद्धि हो जायेगी।

जिस व्यक्ति ने शीत ऋतु में इस पाक को नहीं खाया, उसको वास्तव में हतभाग्य ही समझिये, क्योंकि गार्हस्थ्य जीवन यापन करना भी बड़ा ही कठिन है। यह पाक शक्ति का गुरु है। चेहरे की कान्ति अत्युत्तम हो जाती है। शरीर लाल हो जाता है और मांसपेशियों में रक्त और मांस का योग गठित हो जाता है।

जीवेम :

चूर्ण

जड़ी-बूटियों को सुखा कर तथा कूटकर कपड़े में छानकर जो बनाये जाते हैं, उन्हें चूर्ण कहते हैं। यथाः—

अत्यन्त शुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्र गालितम्।
तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता॥

अग्निमुख चूर्ण

हींग १ तोला, वच २ तोला, पिप्पली ३ तोला, सोंठ ४ तोला, अजवाइन ५ तोला, हरड़ ६ तोला, चित्रक ७ तोला, कूट ८तोला—इन सबका चूर्ण मधु, दही, छाछ या गरम पानी के साथ सेवन करने से उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा, उदर रोग, मलावरोध, शूल, गुल्म, कास, दमा आदि नष्ट होते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पाचन-क्रिया के लिए अत्युपयोगी है। मात्रा ३ माशा से ६ माशा तक।

पुष्यानुग चूर्ण

द्रव्य—पाठा, जामुन की गुठली, आम की गुठली, पाषाण भेद, रसौत, अम्बष्ठिका, मोचरस, वराहक्रान्ता पद्मकेशर, कुमकुम, अतीस मोथा, विल्व, शोधू, गेरू, कट्फल, मिर्चा, सोंठ, द्राक्षा, लाल चन्दन, श्यौनाक छाल, इन्द्र जौ, अनन्तमूल, धाय के फूल, मुलहठी और अर्जुन छाल इन सबका चूर्ण लेना चाहिए।

उपयोग—रक्त व श्वेत प्रदर और योनिक्षत जनित स्राव में, रक्तातिसार में। अम्बष्ठिका में अशोक छाल लेते हैं।

सारस्वत चूर्ण

उपयोग—यह चूर्ण धारणा शक्ति, बुद्धि, धैर्य, स्मरण शक्ति को बढ़ाता है। दिमागी काम करनेवालों को अवश्य ही सेवन करना चाहिए।

विधि—कूट, असगन्ध, सेंधा नमक, अजवाइन, दोनों जीरे, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाठा, शंखाहुली बराबर-बराबर लेकर सब के बराबर वच का चूर्ण। इस चूर्ण को ब्राह्मी रस की ३ भावनाएँ देकर काम में लाना चाहिए।

लवंगादि चूर्ण

इसके सेवन से क्षय, हृदय रोग, कण्ठ के रोग, कास, हिक्का, पीनस, श्वांस, अतिसार, उरःक्षत, प्रमेह, अरुचि, गुल्म, संग्रहणी दूर होते हैं। सगर्भा स्त्री के प्रत्येक रोग में लाभकारी है।

द्रव्य—लौंग, कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, नेत्रवाला, सोंठ, काला जीरा, कमल, वंशलोचन, काला अगर, पिप्पली, चन्दन, तगर, उशीर, कंकोल बराबर-बराबर लेकर कपड़े में छान सबसे आधी चीनी मिलाकर २-२ तोला सेवन करें।

मुरब्बा

पित्त को शान्त करने, मस्तिष्क की गरमी आदि में सेवन किया जाता है। यह बड़ा ही स्वादिष्ट होता है और लाभ भी करता है।

(१) आम का मुरब्बा

कलमी कच्चे आम की पतली फाँकें उतार कर धीमी अग्नि की भाप देनी चाहिए। जब अध भपे हो जायें (गल न जायें) तब कपड़े पर डाल पानी निचोड़ दें, पानी सुखा दें। पश्चात् तीन गुना चीनी की चाशनी कर, फाँकें डाल देनी चाहिए। इलायची, केशर आदि सुगन्धित द्रव्य भी मिला देनी चाहिए।

(२) बेल का मुरब्बा

यह मुरब्बा आम (कच्चा मल) तथा रसयुक्त अतिसार (दस्तों) में व मरोड़ के दस्तों में, जिसमें खून भी आता हो लाभदायक है।

विधि—बेल की फाँकें उतारना चाहिए। पुनः जरा-सी भाप देकर सुखाना चाहिए। फिर तीन गुनी चीनी की चाशनी में डाल दें।

(३) गुलकन्द

यह मेदे की गर्मी तथा आँतों की गर्मी को ठीक करके टट्टी साफ लाता है। दिल की गर्मी को शान्त कर हृत्कम्प को भी ठीक करता है। रुचिकर है। दिमाग को तरोताजगी देता है। चित्त प्रसन्न करता है।

विधि—गुलाब के ताजे फूलों को लेकर पंखड़ियां अलग-अलग कर लेनी चाहिए। पंखडियों के वजन से तीन गुनी चीनी लेना। इनको थोड़ा-थोड़ा चीनी व पंखड़ियों को मसलते रहना चाहिए। फिर अमृतवान में भरते जाना चाहिए, इसी प्रकार प्रतिदिन करते रहना और धूप में मुँह बन्द करके रख देना। बस तैयार है, यदि आवश्यक समझें, तो सुगन्धित द्रव्य भी मिला सकते हैं।

(४) आँवला का मुरब्बा

कच्चे बड़े-बड़े आँवलों को सूवे से छेद कर चूने के पानी में थोड़ी देर पड़ा रहने दें। फिर थोड़ा जोश देकर, कपड़े पर डाल दें। आँवले के वजन से २॥ गुना चीनी की चाशनी वना लें, इसमें आँवलों को डाल दें।

यह पित्त को शान्त करता है, दिल और दिमाग की गरमी को दूर करता है। वलकारक है, रसायन है।

शर्बत

शर्वत वनाने की विधि यह है कि १ सेर पानी में आधा सेर चीनी डालकर १ तार की चाशनी वना लें। ठंडी होने पर बोतलों में भर कर एसेन्स और अर्क मिलाकर तथा रंग वैसा ही डाल वना लें। किन्तु ऐसे शर्वत लाभकारी नहीं होते हैं—लाभ के लिये जिस वनस्पति का शर्बत बनाना हो, उस स्थान पर बनस्पति के पत्तों का स्वरस या फल का रस अघवा मूल अथवा पंचांग का काढ़ा करके उसमें चीनी डाल चाशनी वना लें।

शर्बत दीनार

गुण—रेचक, मूत्रल, मलेरिया, पाण्डु रोग, जलन्धर, पेट के रोगों में तथा स्त्रियों के गुप्त रोगों में, पार्श्व शूल, आंत्र शोथ में लाभदायक है।

द्रव्य—कासनी वीज, गुलाव के फूल, नीलोफर, जावजुवाँ, सौंफ, उस्ताव फूल प्रत्येक १-१ तोला, कासनी की जड़ की छाल सौंफ की जड़ की छाल, प्रत्येक २-२ तोला कुसुम के बीज, रेवन्द्र चीनी, प्रत्येक ९-९ माशा सवको पोटली बना पानी में उबाल कर शर्वत तैयार करें।

शरबत गुलाब

गुण—इसके पीने से पेट का कब्ज मिटता है, गर्मी को दूर करता है। जितना पानी इसके ऊपर ठंडा या वर्फ पीओगे उतने, ही दस्त लगेंगे।

विधि—गुलाव के नीले फूल ४० तोला, पानी ३ सेर में उबालो २॥ सेर पानी रहने पर २॥ सेर गुलाव के फूल पीसकर मिला दो, जब १ सेर पानी रहे तब १॥ सेर चीनी मिला चाशनी बना लें। ४ तोला की खुराक है।

शरबत चन्दन

गुण—यह शर्बत हृदय को बल देता है, दिमाग को शक्ति प्रदान कर बकझक को दूर करता है। चित्त प्रसन्न कर रुचिप्रदाता है।

विधि—सफेद चन्दन का बुरादा आधा सेर लेकर ४ सेर पानी में उबालो, १ सेर पानी रहने पर चीनी डाल किमाम पका लो। इसमें गुलाब जल और मिला कर बनाया जाय तो अच्छा होगा। इसी प्रकार अन्य प्रकार के भी शबंत बनाये बनाये जा सकते हैं।

चटनी

द्राक्षादि चटनी

काली दाख, जरदालु, मिर्च, सेंधा नमक, घी में भुनी भांग, जीरा, सोंठ, संचल, लहसुन की कलियां प्रत्येक १-१ तोला, खजूर ५ तोला, हींग भुनी १ तोला, फूल गुलाब १० तोला, पीपल १ तोला, नींबू का रस २० तोला, गुड़ २० तोला। शुष्क औषधियों का चूर्ण करके खजूर जरदालु, द्राक्षा मिलाकर चटनी करके रख लेना चाहिए।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक।

उपयोग—भूख वढ़ाती है, भोजन में रुचि पैदा करती है।

द्रव्य—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवाइन, अजमोह, दालचीनी, लवंग, सफेद जीरा, कालाजीरा, हींग, अकरकरा, प्रत्येक १-१ तोला (हींग व जीरा पृथक्-पृथक् घी में भून लेना) सेंधा नमक ११ तोला, काला नमक ११ तोला, मिश्री ११ तोला, इन सबको कूट कर कपड़े में महीन छान लें, पुनः किशमिश ११ तोला, छुहारे गुठली निकाल कर ११ तोला तथा अदरख के टुकड़े ११ तोला लेकर चीनी या कांच के बर्तन में डाल दें और नींबू का रस इतना भरें कि सव बर्तन में यह वस्तुएँ डूव जायें। बाद में लकड़ी से मिला दें और १५ दिन तक रक्खा रहने दें। १५ दिन के बाद भोजनोपरान्त खाया करें।

उपयोग—चित्त प्रसन्न करती है। समय पर भूख लगाती है। अजीर्ण की शिकायत नहीं होने देती। यह चटनी वड़ी ही स्वादिष्ट है। खाने से ही स्वाद का पता लगेगा।

सम्मतियाँ

वद्य रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ' को मैं वर्षों से जानता हूँ। वे जैसे ही मेधावी नवयुवक हैं, वैसी ही उनमें आयुर्वेद के प्रति निष्ठा और कार्य करने की क्षमता भी अप्रतिम है। एक सुयोग्य वैद्य में जो गुण होना चाहिए, वे सारे गुण इनमें विद्यमान हैं।

लेखक के रूप में शर्माजी 'जीवेम' के माध्यम से पहले पहल आयुर्वेद-साहित्य में उतरे हैं। यों प्रथम कृति होने के कारण पुस्तक में कुछ कमी रहना स्वाभाविक है। फिर भी उनका अपना अनुभव और आयुर्वेद-शास्त्र का गहन अध्ययन पाठकों को अपनी तरफ आर्कषित किये विना नहीं रहता।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें केवल आयुर्वेद के नुस्खे ही नहीं बतलाये गये हैं, बल्कि स्वास्थ्योपयोगी विभिन्न आसनों का भी संक्षेप में विवेचन किया गया है, जिनसे हमारे देश के प्राचीन योगियों ने दीर्घजीवन प्राप्त किया था।

सीधी-सादी सरल भाषा और प्रवहमान शैली इस पुस्तक की विशेषता है। मैं हृदय से 'जीवेम' के लेखक के प्रति मंगलकामना प्रकट करता हूँ और आशा करता हूँ कि निश्चय ही आयुर्वेद-जगत इनका स्वागत करेगा।

अक्षय तृतीया
संवत् २०२१

—परमानन्द शर्मा

प्रातः स्नान करने जा रहे महर्षि पतञ्जलि ने मुर्गे की 'वांग' को प्रश्न समझा कि वह पूछ रहा है—

"कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक् ?" उनके मुख से अनायास निकल पड़ा 'पथ्याशी व्यायामी स्त्रीसु जितात्मा सोऽरुक् सोऽरुक् सोऽरुक्'। अर्थात् जो मनुष्य पथ्य—जीवन पथ के उपयोगी भोजन करते हों, व्यायाम शील हों, ब्रह्मचारी हों, वे नीरोग रहते हैं।

आज दुर्भाग्य से ये तीनों ही काण्ड भ्रष्ट हो गये हैं। जीवन-पथ के उपयोगी पदार्थ प्राप्य ही नहीं। व्यायाम के लिये शक्ति या अनुरक्ति नहीं। अब ब्रह्मचर्य रह गया केवल पुस्तकों और भाषणों में। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य को समृद्ध करनेवाले सन्देश बहुत ही सामयिक और उपादेश हैं। मैं 'जीवेम' एवं इसके लेखक श्री रामाधीनजी शर्मा की पूर्णतः सफलता चाहता हूँ। कविराज जी बहुत ही उत्साही एवं कर्मठ युवक हैं। आपसे समाज को बहुत आशा है।

—श्री निवास शास्त्री